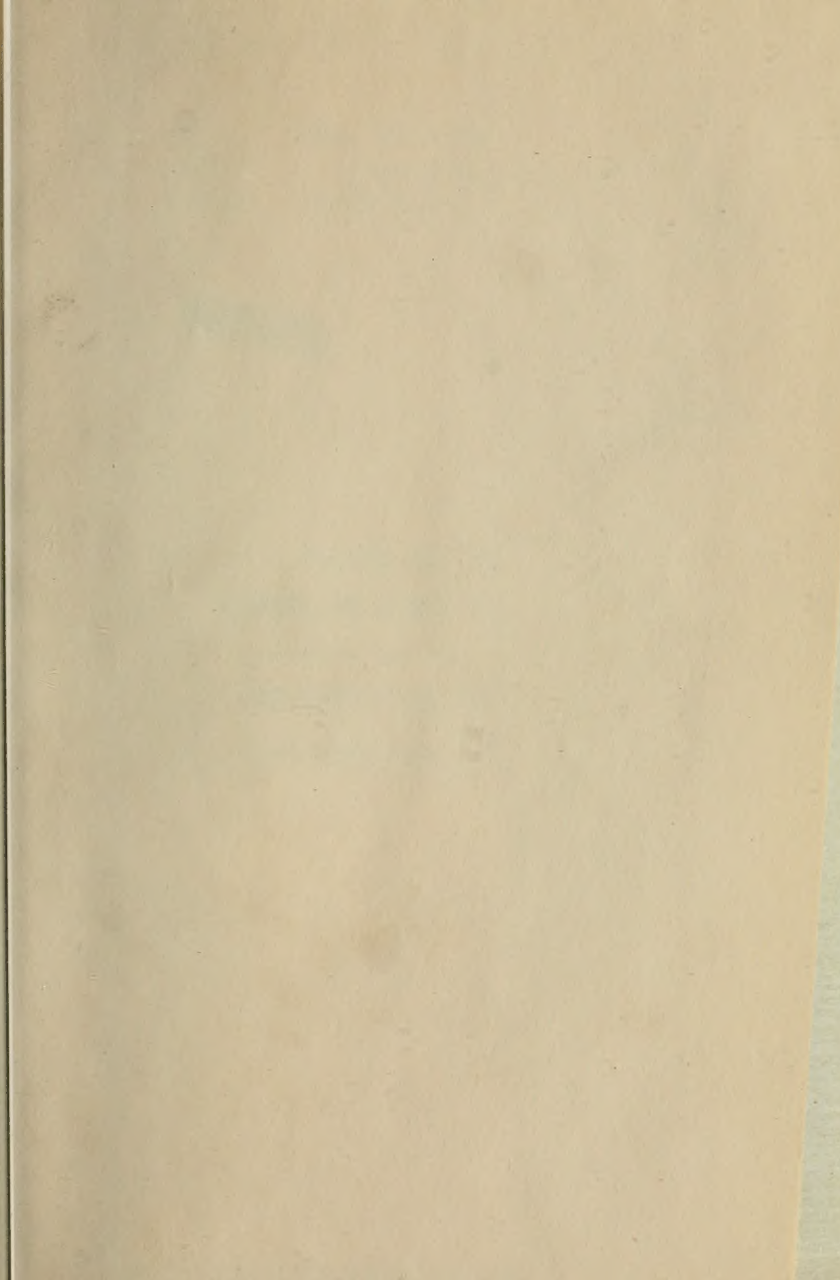
सेठ गोविन्ददासजी का साहित्य

गोविन्ददास ग्रन्थावली	तीन भाग	२१)
हर्ष	नाटक	२॥)
अशोक	,,	२॥)
भिक्षु से गृहस्थ, गृहस्थ से भिक्षु	,,	२)
प्रकाश	,,	३॥)
सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य	,,	२)
विश्व-प्रेम	,,	३)
महात्मा गाँधी	,,	२॥)
भविष्यवाणी	एकांकी	३)
शाप और वर	,,	२॥)
स्पर्द्धा	,,	२॥)
धोखेबाज	,,	३)
प्राग् कालीन भारत की एक झलक		२॥।)
प्राचीन काश्मीर की एक झलक		२॥)
दक्षिण भारत की एक झलक		२॥।)
मुग़ल कालीन भारत की एक झलक		१॥)
अँग्रेजों का आगमन तथा उसके बाद		२॥।)
हमारे मुक्ति-दाता		२॥)
इन्दुमती (ग्रन्थावली सातवाँ खण्ड)	उपन्यास	७)
प्रेम-विजय	काव्य	२॥)
पत्र-पुष्प	,,	१॥।)
शवरी	,,	१।)
स्नेह या स्वर्ग	,,	१॥।)
संवाद-सप्तक	,,	१।)
गोविन्ददास ग्रन्थावली (आठवाँ खण्ड)	,	७)
	जीवनी व संस्मरण	
स्मृति-कण		४)
आत्म-निरीक्षण (ग्रन्थावली खण्ड ४-५-६)		२२)
ब्रज और ब्रजयात्रा		५॥)
रासलीला		२॥)

भारतीय विश्व-प्रकाशन, दिल्ली



तलवार लटक रही है। उसके पीछे उसका बड़ा भाई देव भी आता है। उसकी वेशभूषा भी बदल गयी है। वह रेशमी शेरवानी और चूड़ीदार पैजामा पहने है। सिर पर साफा है। हरिया जिसका नाम अब हरिसिंह हो गया है, कर्णसिंह के पास लाया जाता है। कर्णसिंह उठकर उसे कालिन्दी की गोद में बैठाता है। जोर के "धन्य-धन्य" शब्द होते हैं। अनेक नागरिक, जिनके हाथों में पुष्प हैं, माता और पुत्र के ऊपर पुष्पवर्षा करते हैं। नेपथ्य में मंगल वाद्य बजता है।]

यवनिका

समाप्त

सम्पन्नता की वजह से अगर वे अपने कर्त्तव्यों का ठीक दिशा में पालन करें तो इस देश की शायद सबसे अधिक सेवा वे कर सकते हैं। आपको यह जानकर हर्ष होगा मेरे इस दत्तक-निर्णय में हृदय परिवर्तन की इन भावनाओं का बहुत बड़ा हाथ है।

कुछ नागरिक : (**एक साथ**) जरूर, जरूर।

कालिन्दी : इस देश की सामाजिक रचना आगे चलकर चाहे किसी भी रूप की हो जाय, परन्तु आज की सामाजिक रचना में सबसे ज्यादा महत्त्व क्षुधितों और दलितों की सेवा का है।

कुछ नागरिक : (**एक साथ**) अवश्य, अवश्य।

कालिन्दी : अतः मैं ऐसे दत्तक को ले रही हूँ जिसके निर्माण में मुझे माता और पिता दोनों के द्वारा निर्माण के महान् कार्य में जो सुख मिलता है वह मिले ही, साथ ही, उसे ऐसा बना सकूँ कि वह इस देश की निर्धन जनता से सच्ची सहानुभूति रख अपने सारे साधनों से उसकी सच्ची सेवा कर सके।

कुछ नागरिक : (**एक साथ जोर से**) धन्य है, धन्य है!

कालिन्दी : (**खुमानसिंह से**) खुमान, लाओ, हरिसिंह को। (**कुर्सी पर बैठ जाती है।**)

[खुमानसिंह का प्रस्थान और हरिया के साथ धीरे-धीरे प्रवेश। हरिया की सारी वेश-भूषा बदल गयी है। वह अब जरी की अचकन और सफेद चूड़ीदार पाजामा पहने हुए है। सिर पर पगड़ी है जिसपर सिरपेच और कलगी है। गले में हार हैं। हाथों में जड़ाऊ कड़े और अंगूठियाँ। कमर जरी के दुपट्टे से बँधी है, जिसमें सोने की रत्न-जटित मूठ की मखमल के म्यान में छोटी-सी

और उसे एक आदर्श माता और आदर्श पिता का एक चरित्रवान् आदर्श पुत्र बनाऊँ।

कुछ नागरिक : (एक साथ) धन्य है, धन्य है !

कालिन्दी : आज की हालत में इस देश के पुराने नरपतिगण भी साधारण नागरिक बन गये हैं। उन्होंने खुद अपने अधिकारों को भारतीय हित के लिए भारतीय संघ को सौंप दिया है, जो उनकी एक ऐतिहासिक कुर्बानी है, साथ ही समाज की, देश की एक स्तुत्य सेवा भी। दुनियाँ के इतिहास में शायद ही कहीं ऐसी घटना हुई है। जिस तरह भारत को बिना एक बूँद भी खून बहाये आजादी मिली उसी तरह इस देश के करीब छः सौ नरपतिगणों के अपने अधिकारों के बलिदान करने से इस देश की भौगोलिक और राजनैतिक एकता भी हो सकी। भारत की आजादी जिस प्रकार हृदय परिवर्तन की एक अद्वितीय और अनूठी घटना है उसी प्रकार इन नरपतिगणों का यह ऐच्छिक अधिकार त्याग दूसरी असाधारण घटना। हृदय परिवर्तन के इस युग ने जहाँ एक ओर अधिकारों के बलिदान का पाठ हमें सिखाया है वहीं दूसरी ओर हमारे अन्दर एक आत्मिक एकता को भी बढ़ाया है। हृदय के इस परिवर्तन ने, भावनाओं के इस शुद्धीकरण ने आदमी से आदमी का परिचय बढ़ाया है उसके बीच का भेद मिटाया है और उसे एक दूसरे के निकट लाकर खड़ा कर दिया है। यह सही है कल के नरपतिगण आज के साधारण नागरिक हो गये हैं। इतने पर भी अपनी

गया है जो हर दृष्टि से सही है। निर्माण करने की जैसी ताकत स्त्री में है वैसी पुरुष में नहीं। सबसे बड़ा निर्माण का काम जीवित सृष्टि को निर्मित करना है। उसका निर्माण होता है पहले माता की कूख में और उसके बाद माता ही उसे पाल पोसकर बड़ा कर नागरिकता के लायक बनाती है।

कुछ नागरिक : (एक साथ) ठीक है, ठीक है।

कालिन्दी : मैं मन्द भागिनी हूँ कि मैं अपनी कूख में किसी को धारण नहीं कर सकी। लेकिन अगर मुझे अपनी गोद खाली नहीं रखनी है तो मैं किसी ऐसे बालक को अपनी गोद में बिठाना चाहती हूँ जो कम उम्र का हो, ऐसी उम्र का जिसमें मन ठोस नहीं होता, मन की अवस्था निर्माण की होती है और वह जिस रुख में भी चाहे मोड़ा जा सकता है। अतः मैंने एक कम उम्र का बालक दत्तक के रूप में लेने का निर्णय किया है। साथ ही मैंने एक ऐसे बालक को गोद में बिठाने का निश्चय किया है जो पितृविहीन हो। जिससे वह मुझे सिर्फ माता ही न माने, पर अपने पिता की जगह पर भी मुझे ही समझे और उसका निर्माण करते हुए मैं भी केवल माता का कर्म न कर पिता की भी जिम्मेदारी निभाऊँ। मेरे द्वारा ही उसे माता की ममता भी मिले और पिता का प्यार भी। मेरी इच्छा है कि मैं अपने इस दत्तक पुत्र का लालन-पालन और उसका निर्माण माता की कोमल भावनाओं और पिता के कर्त्तव्यपरायण कठोर हृदय दोनों से करूँ

को स्वीकार कर जिसे भी मैं गोद लेना चाहूँ उसे गोद लेने की मुझे इजाजत दे दी। मैंने अपने भाई राजा नरराजसिंह को भी इस सम्बन्ध में अपने उसूल बताये और उन्होंने भी उनका समर्थन किया। आप जानते हैं कि मैं जीवन-भर एक दुःखी महिला रही हूँ। शैशव में ही माता-पिता के वात्सल्य सुख से वंचित हुई। दाम्पत्य जीवन में प्रवेश किया और ममता भरी भावनाओं से मातृ-सुख की कल्पनाओं में डूबती उतराती रही। वह न मिला, अपने अभाग्य के आसरे पति के साथ किसी तरह संतुष्ट जीवन बिताने की कोशिश कर रही थी कि निष्ठुर नियति ने नौजवानी में ही पति-सुख से भी वंचित कर दिया। इस तरह मेरा सारी जिन्दगी एक पीड़ित जीवन रहा है। दुःखियों के साथ दुःखी की ही सच्ची सहानुभूति हो सकती है।

कुछ नागरिक : जरूर जरूर।

कालिन्दी : अन्य दुःखों के साथ इस देश का सबसे बड़ा दुःख इस देश के निवासियों की गरीबी है।

कुछ नागरिक : (एक साथ) बिला शक, बिला शक।

कालिन्दी : निर्धनों के संग सच्ची संवेदना उनकी रहती है, जिन्होंने निर्धनता के दुःख सहे हैं।

कुछ नागरिक : (एक साथ) अवश्य, अवश्य।

कालिन्दी : इसलिए मैंने निश्चय किया कि मैं ऐसे लड़के को गोद लूँगी जो गरीब से गरीब हो।

कुछ नागरिक : (एक साथ) धन्य है, धन्य है!

कालिन्दी : हमारे यहाँ निसर्ग अथवा प्रकृति को स्त्रीलिंग माना

छठा दृश्य

स्थान : कर्णसिंह के महल का प्रांगण

समय : सन्ध्या काल

[**प्रांगण किसी मंगल कार्य के लिए केले के वृक्षों और बन्दनवारों से सजाया गया है। बीच में एक शामियाना लगा है, जिसमें कुर्सियों की बैठक है। बीच की दो ऊँची कुर्सियों पर कर्णसिंह और कालिन्दी बैठे हैं; कुछ अन्य कुर्सियों पर कर्णसिंह के भाई, बेटे (नातेदार) राजकर्मचारी और रियासत के प्रतिष्ठित नागरिक। एक ओर चिक पड़ा है जिसके भीतर वसुन्धरा अन्य महिलाओं के साथ दीख पड़ती है। इधर-उधर अन्य नागरिक खड़े हैं। इन्हीं में खुमानसिंह तथा कालिन्दी की वे दोनों परिचारिकाएँ भी हैं, जिन्हें हमने दूसरे दृश्य में देखा था। एक खासी भीड़ है।**]

कालिन्दी : (**खड़े होकर**) पूज्य दरवार, पूजनीय राजमाता, पूज्य-जनों और नागरिको ! जो गोद-नशीनी की रस्म अभी अदा होने जा रही है, उस गोद-नशीनी से आप सबको कुछ आश्चर्य हो सकता है। परन्तु, दत्तक लेना जब मैंने मंजूर किया तभी से यह विषय मेरी दिवस की चिन्ता और रात्रि का स्वप्न रहा है। कुछ सिद्धान्तों पर ही मैंने दत्तक लेने की पूज्य दरवार और पूजनीय राजमाता जी को मंजूरी दी थी। अभी-अभी इसके सम्बन्ध में मैंने अपने सिद्धान्तों को भी उन्हें वतलाया और मुझे इस बात पर अजहद खुशी है कि पूज्य दरवार और पूजनीय राजमाताजी ने मेरे उन सिद्धांतों

हूँ) चलो, हम भी फाटक पर चलें, देखें क्या भेद निकलता है।

[सब नागरिकों का प्रस्थान।]

लघु यवनिका

पहला इन्सपेक्टर : उस गाँव में तो तलाश कर लिया, वहाँ नहीं है।

दूसरा इन्सपेक्टर : वहाँ मालूम हुआ कि यहाँ रहता है।

एक नागरिक : (कुछ विचारते हुए) अरे, वह हरिसिंह नहीं हरिया होगा !

एक नागरिक : हरिया जो फाटक के पास अपने भाई के साथ रहता है।

पहला नागरिक : हाँ, वही।

पहला इन्सपेक्टर : तुम जानते हो कहाँ रहता है ?

वही नागरिक : हाँ, मैं जानता हूँ।

दूसरा इन्सपेक्टर : हमें उसका मकान दिखा दोगे ?

वही नागरिक : हाँ, हाँ, चलिए।

[उसी नागरिक के साथ दोनों इन्सपेक्टर और कुछ नागरिक जाते हैं।]

एक नागरिक : यह हरिया कौन है, भाई ?

दूसरा नागरिक : मैं भी जानता हूँ, बड़ा गरीब है। कभी-कभी भुँजे चने, वह भी उधार लेकर, खाते उसको मैंने देखा है।

एक नागरिक : करता क्या है यहाँ ?

वही नागरिक : शायद पढ़ता है।

एक नागरिक : गरीबी कौन-सा पाप नहीं कराती। कोई न कोई जुर्म किया होगा इसीलिए पुलिस वाले तलाशने आये हैं।

एक नागरिक : और जुर्म भी कोई संगीन दिखता है, नहीं तो दो-दो इन्सपेक्टर साथ-साथ क्यों आते ?

एक नागरिक : (उस नागरिक से जिसने कहा था कि मैं भी उसे जानता

पाँचवाँ दृश्य

स्थान : नगर का एक मार्ग

समय : अपराह्न

[**दो पुलिस के इन्सपेक्टरों के साथ कुछ नागरिकों का प्रवेश। पुलिस के इन्सपेक्टर अपनी वर्दी के कारण ज्ञात हो जाते हैं। नागरिक भिन्न-भिन्न आयु के व्यक्ति हैं। वेशभूषा साधारण।**]

एक इन्सपेक्टर : (**नागरिकों से**) हाँ, हाँ, भाई, उसका नाम हरिसिंह है।

एक नागरिक : (**कुछ विचारते हुए**) हरिसिंह !......हरिसिंह नाम का तो कोई लड़का यहाँ रहता सुना नहीं।

कुछ नागरिक : (**एक साथ**) कभी नहीं।

दूसरा इन्सपेक्टर : मैं आप लोगों को उसका हुलिया बताता हूँ, उम्र करीब बारह साल, दुबला-पतला, रंग गोरा, गरीबी की वजह से जैसी वेशभूषा होती है, वैसे फटे थिगड़े लगे कपड़े।

पहला इन्सपेक्टर : यहाँ से चौबीस मील पर जो सुरखी नाम का गाँव है वहाँ का रहने वाला है।

एक नागरिक : ऐसे किसी लड़के को हमने तो देखा नहीं।

कुछ नागरिक : (**एक साथ**) हाँ, किसी ने भी नहीं।

एक नागरिक : उसी गाँव में रहता होगा जिसका अभी आपने नाम लिया।

निधि तेरी गति लख न परै ।" यह पद गाते हुए कोई व्यक्ति निकट आता-सा प्रतीत होता है । हरिया फिकी हुई थाली का सामान इकट्ठा करता है ।]

हरिया : तुम नहीं खाते तो मैं इसे बाहर भिखारी को दिये आता हूँ, जो गाते हुए इसी तरफ आ रहा है । और देखो, भैया, मुझसे जैसी रोटी बनती थी वैसी बना देता था । कल से मैं न बनाऊँगा । या तो खुद बना लेना या किसी दूसरे से बनवा लेना ।

देव : (**कुछ क्रोध से**) हाँ, दे दे भिखारी को । अरे, तेरे यही ढंग रहे तो एक दिन तुझे उसी भिखारी का रास्ता पकड़ना पड़ेगा । रोटी तक बनाते बनती नहीं, ऊपर से मुँह जोरी करता है, रोटी नहीं बनाऊँगा, जैसे अब यह राज करेगा ?

लघु यवनिका

कि स्कूल की किताबें और नाश्ते में जो चने खाना हूँ, उसके पैसे जल्दी ही भेज देंगी। आते ही चुका दूँगा।

देव : तो किताबों के भी दाम बाकी हैं! और किस-किस का कर्जा ले रक्खा है?

हरिया : कर्जा लेकर क्या माँ का बोझ बढ़ाऊँगा। और मुझे कर्ज़ देता ही कोई क्यों। माँ ने कहा था भूख लगे तो भुँजे चने खा लूँ और जरूरी किताबें ले लूँ। इसीलिए ये थोड़े से पैसे बाकी हैं।

देव : खाना बन गया?

हरिया : हाँ, तुम्हारी थाली (**थाली की ओर संकेत कर**) वह रक्खी है।

देव : और तेरी?

हरिया : आज मुझे भूख नहीं है।

देव : कुछ ज्यादा चने खा लिये हैं। (**थाली के पास जाता है।**)

हरिया : ऐसा ही समझ लो।

[**ढकी हुई थाली उठाता है, उसके नीचे की थाली में एक तरफ दाल है और दूसरी तरफ जली-सी कुछ रोटियाँ।**]

देव : (**एकदम बिगड़कर**) जली रोटियाँ खाऊँ? सारी रोटियाँ जला डालीं।

हरिया : आज इधर-उधर से कुछ रोटियाँ जल गयी हैं, जले हुए किनारों को निकालकर बीच की खालो।

देव : (**थाली फेंकते हुए**) ऐसी जली भुँजी रोटी मैं नहीं खा सकता। इतने दिन में तूने जब रोटी बनाना भी न सीखा तब जिन्दगी में और क्या करेगा।

[**नेपथ्य से सूरदास का निम्नलिखित पद सुन पड़ता है —— "दया**

चौथा दृश्य

स्थान : नगर के एक फाटक के निकट एक छोटे से घर की दालान
समय : मध्याह्न के पश्चात्

[घर की दालान से जान पड़ता है कि घर किसी गरीब से गरीब व्यक्ति के रहने का स्थान है। मैली-कुचैली दीवालों के कुछ भाग दिख पडते हैं। दालान की भूमि गोबर से लिपी हुई है और उसमें कई गड्ढे हैं। एक तरफ मिट्टी का चूल्हा है, जिसकी आग बुझ गयी है। चूल्हे के पास ही एक काँसे की टेढ़ी-मेढ़ी थाली से ढकी हुई एक थाली रखी है। एक ओर बोरा बिछा है। इधर-उधर कुछ अत्यन्त साधारण गृहस्थी का सामान अस्त-व्यस्त पड़ा है। हरिया दालान की भूमि को एक टूटे से झाड़ू से झाड़ रहा है। उसकी अवस्था लगभग बारह वर्ष की है। दुबला-पतला शरीर है। रंग गेहुँआ है। फटा-सा थिगड़ेल कुरता और धोती पहने हुए है। यद्यपि गरीबी का पूरा प्रभाव है तथापि उसके आनन से कुछ तेजस्विता झलकती है। देव का प्रवेश। इसकी अवस्था हरिया से ४-६ वर्ष अधिक है। चेहरा हरिया से मिलता हुआ। वेश-भूषा वैसी ही गरीबी की, जैसी हरिया की।]

देव : क्यों, रे हरिया, सामने का चने वाला कहता था कि तूने उसके पैसे नहीं चुकाये।

हरिया : (झाड़ू देना बन्दकर) हाँ, कुछ दिन के उसके पैसे वाकी हैं।

देव : कुछ दिन के वाकी हैं, याने तू चने उधार लेकर खाता रहा?

हरिया : क्या करता? भूख तो बुझानी ही पड़ती। मिठाई लेकर तो कहीं से खायी नहीं। चने ही खाये हैं न! माँ ने कहा था

कर्णसिंह : (विचारते हुए) इतना तो पक्का है न, कि वे जिसे भी लायँगी वह अज्ञात कुलशील नहीं होगा।

वसुन्धरा : इस सम्वन्ध में वे मुझे वचन दे चुकी हैं कि लड़का आपके कुटुम्ब के ही किसी घर का होगा।

[कर्णसिंह सिर झुका विचारमग्न हो जाता है। वसुन्धरा उसकी ओर देखती रहती है।]

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान : कर्णसिंह के भवन का कमरा

समय : मध्याह्न

[कमरा पुराने ढंग के राजसी महलों के कमरों के सदृश सजा है। एक गद्दी पर मसनद से टिका हुआ कर्णसिंह बैठा है। उसके निकट ही वसुन्धरा बैठी है। दोनों वृद्ध हैं। कर्णसिंह एक कुरता और पाजामा पहने है। सिर खुला है। सिर के बाल उड़े हुए हैं। छोटी-छोटी खसखसी मूँछें हैं। वसुन्धरा साड़ी और चोली पहने है। कुछ आभूषण भी धारण किये है।]

वसुन्धरा : हाँ, मेरी साफ......साफ राय है कि भँवर जी कौन लाये जायँ, इसके फैसले का पूरा अधिकार कुँवरानी जी को दे देना चाहिए।

कर्णसिंह : मैं पहले तो इस राय का नहीं था, पर तुम्हारे बराबर यह कहते रहने पर कि आखिर उस लड़के के साथ उन्हीं को अपनी जिन्दगी तै करनी है, अब मैं भी इस मामले में कोई दखल नहीं देना चाहता। पर कुँवरानीजी इस फैसले को कुछ सिद्धान्तों पर करना चाहती हैं। मुझे अगर वे उसूल मालूम हो जाते।

वसुन्धरा : यह भी उन्हीं पर छोड़िए। वे पढ़ी-लिखी हैं। आज के जमाने को हमसे ज्यादा जानती हैं।

कर्णसिंह : हाँ, यह भी ठीक है, लेकिन......

वसुन्धरा : अब आप अगर मगर लेकिन कुछ न कहें। सब कुछ उन पर छोड़ दें। हम अब कितने दिन के हैं।

दूसरी : पर, बहन, उस दिन जो लड़के पसंदगी के लिए बुलाये गये थे उनमें से तो मुझे कोई अच्छा नहीं दिखा।

पहली : वह तो जो भी यहाँ आएगा, अच्छा हो जाएगा।

दूसरी : हाँ, सो तो ठीक है, पर पूत के लक्खन तो पालने में ही दिख जाते हैं।

[**खुमानसिंह का प्रवेश। खुमानसिंह अधेड़ अवस्था का है। वेशभूषा राजा लोगों के परिचारकों के सदृश—छोटा कोट, पैंजामा, साफा।**]

खुमानसिंह : हो गया……फैसला हो गया हमारे भँवरजी का।

दोनों परिचारिकाएँ : (उत्सुकता से एक साथ) किस……किस के भाग जागे ?

खुमानसिंह : नाम अब तक नहीं खुला है, पर फैसला व्यक्ति को सामने न रखकर कुछ सिद्धान्तों को सामने रखकर किया गया है।

पहली : कौन से सिद्धान्त ?

खुमानसिंह : वे भी पोशीदा रखे गये हैं। व्यक्ति के नाम के साथ ही उन सिद्धान्तों को भी बताया जायगा।

दूसरी : आज सारा फैसला हो जाएगा।

खुमानसिंह : हाँ, आज सब कुछ हो जाएगा।

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान : कालिन्दी के निवास स्थान में परिचारकों का कमरा

समय : प्रातःकाल

[**कालिन्दी की दो परिचारिकाएँ आपस में बातें कर रही हैं। दोनों युवावस्था की हैं। लहँगा पहने हैं, ओढ़नी ओढ़े हैं।**]

एक : हाँ, आज हमारे भँवरजी का फैसला हो जायगा।

दूसरी : वह तो कुमारजी के बारहवें दिन ही हो जाता, लेकिन राजाजी और कुँवरानी जी की एक राय नहीं थी।

पहली : हाँ, राजाजी ऐसे लड़के को चाहते थे जो धनवान घर का हो, अच्छी तरह पाला-पोसा और पढ़ा-लिखा।

दूसरी : राजाजी की यह इच्छा उनकी उमर देखते हुए ठीक भी है। वे अब सत्तर पार कर गये। चाहते हैं उनके सामने ही भँवरजी का ब्याह शादी हो जाय। वे कामकाज भी देखने लगें।

पहली : कामकाज ! रियासतों में अब काम तो रहा ही नहीं। राजाजी का भी सारा बखत भगवान् के भजन में ही जाता है। रोज दोनों बखत मन्दिर में दर्शन करते हैं और हाथ में तो सदा ही सुमरनी रहती है।

दूसरी : सो तो ठीक है, पर बुढ़ापे में उस लड़के का ब्याह-शादी कर देने की उनकी इच्छा तो मामूली बात है।

पहली : इस दुनियाँ में ऐसी इच्छाओं का तो कभी भी खातमा नहीं होता। इस विषय में तो कुँवरानीजी की इच्छा ही सब कुछ होनी चाहिए।

कालिन्दी : भाई, उन्हीं सिद्धान्तों को सामने रख मैंने यह निर्णय किया है। आज मुझे अपना बीता हुआ सारा जीवन याद आ रहा है। ज्योतिषियों के फेर में पड़ और यह मान कि मैं जिस नक्षत्र में जन्मी हूँ उसकी वजह से मेरा मुँह देखने से भी कोई अशुभ हो सकता है, मैं तुम्हारे राज्य से निकाली गयी। वर्षों दिल्ली में रक्खी गयी। तुम्हारा खानदान देश के सर्वश्रेष्ठ नरपतियों का खानदान होते भी मेरा विवाह किया गया एक जागीरदार के घर में। फिर, वैवाहिक जीवन भी कैसा रहा यह तुमसे छिपा नहीं है और आखिर भगवान् ने वैधव्य का दुःख भी दिखाया। तुम्हारी राय और अपने जीवन का सिंहावलोकन कर मैंने अपना निर्णय किया है।

नरराजसिंह : पर सवाल कर्णसिंह और वसुन्धरा का भी तो है।

कालिन्दी : दत्तक मैं ले रही हूँ, वे नहीं।

लघु यवनिका

[नरराजसिंह उलट-पलटकर उसे देख टेबिल पर रखता है। इसके बाद कुछ और दरख़्वास्तें कालिन्दी इसी प्रकार नरराजसिंह को देती है और वह पहली दरख्वास्त के सदृश ही अन्य दरख्वास्तों को भी उलट-पलट कर देख उसी तरह टेबिल पर रखता है।]

नरराजसिंह : दरख्वास्त सचित्र ही नहीं अनेक तरह के सर्टिफिकेटों के साथ है।

कालिन्दी : कुछ दरख्वास्तों में तो नज़र की बात भी लिखी हुई है।

नरराजसिंह : अजीब दुनिया है, ऐसे ही मौकों पर जान पड़ता है कि यह आदमी कितना स्वार्थी है और अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को भी कितना स्वार्थी बनाने की कोशिश करता है।

कालिन्दी : हाँ, एक महाशय ने तो यहाँ तक लिख मारा है कि अगर उसके लड़के को मैं गोद ले लूँ तो वह एक लाख रुपया नज़र करने को तैयार है। (सब दरख्वास्तों को उठा कर जमीन पर पटकते हुए) और तुम जानते हो मैंने क्या फैसला किया है ?

नरराजसिंह : फैसला क्या किया है, यह तो नहीं जानता, पर तुम क्या सोच रही हो यह जरूर जानता हूँ।

कालिन्दी : (खड़े हो एक सोफा के निकट जाते हुए) जो सोचती थी वह विचार अब फैसले के रूप में बदल गया है। (सोफा पर बैठ जाती है।)

नरराजसिंह : (उसी सोफा पर बैठते हुए) हालांकि फैसला करने का तुम्हारा अधिकार है, लेकिन यह निर्णय किन सिद्धान्तों पर हो इस सम्बन्ध में मैंने जो राय दी थी उस पर भी विचार कर लिया है न ?

पहला दृश्य

स्थान : कालिन्दी के निवास-स्थान का एक कमरा

समय : उषःकाल

[**आधुनिक ढंग का अच्छी प्रकार सजा-सजाया कमरा है । कालिन्दी राइटिंग टेबिल के निकट अपनी आफिस चेयर पर बैठी हुई टेबिल पर रखे हुए कुछ कागजों को उलट-पलट कर देख रही है। उसकी अवस्था लगभग तीस वर्ष की है । वह गौर वर्ण की है । मुख और शरीर सुन्दर । वेशभषा से विधवा जान पड़ती है । कुछ देर निस्तब्धता रहती है । नरराजसिंह का प्रवेश । उसकी अवस्था लगभग पच्चीस वर्ष की है । गौर वर्ण का सुन्दर युवक है । वेशभूषा पश्चिमी ।**]

नरराजसिंह : (**कालिन्दी की ओर बढ़ते हुए**) अच्छा, इतनी मग्न हो आज कि मेरे आने की आहट भी सुनायी नहीं दी !

कालिन्दी : (**नरराजसिंह की ओर देखते हुए**) आज ही जो इस वक्त के जीवन का सर्वप्रधान तास्फिया होना है ।

नरराजसिंह : (**राइटिंग टेबल के निकट की एक कुर्सी पर बैठते और टेबिल पर रखे हुए कागजों पर दृष्टि डालते हुए**) दरख्वास्तों का तो ढेर लग गया है !

कालिन्दी : (**अपनी कुर्सी पर बैठते हुए**) क्या पूछते हो ? सचित्र दरख्वास्तें हैं और उनमें भी केवल एक-एक फोटो नहीं; पूरी फोटो, बस्ट, सामने की तरफ की, पीछे की तरफ की, बगल की इत्यादि और उनमें भी न जाने कितने पोज़ । देखोगे इन सचित्र दरख्वास्तों में से कुछ को ? (**एक दरख्वास्त नरराजसिंह को देती है ।**)

पात्र, समय, स्थान

मुख्यपात्र : **(नाटक में प्रवेश के अनुसार)**

कालिन्दी : कर्णसिंह के स्वर्गवासी पुत्र युवराज अर्जुनसिंह की कुँवरानी

नरराजसिंह : एक राजा, कालिन्दी का भाई

खुमानसिंह : कलिन्दी के साथ उसके मैके से आया हुआ उसका परिचारक

कर्णसिंह : एक जागीरदार राजा

वसुन्धरा : कर्णसिंह की रानी

हरिया : बाद में हरिसिंह, जिसे कुँवरानी ने गोद लिया

देव : हरिया का बड़ा भाई

स्थान : भारत की एक पुरानी रियासत

समय : सन् १९५९ ईस्वी

जब भाग्य जागता है

देश पर सब कुछ बलिदान कर इस तरह का अपवाद सुना हो, उसकी अगर आँखों की ज्योति जाकर तुम्हारे माफिक हालत हो जाय तो इसमें ताज्जुब की बात नहीं। कैसी यह दुनियाँ है, माँ, एक ओर—'बिस्मिल जिन्दाबाद' के गगन-भेदी नारे और चुनाव में वोट लेने के लिए 'बिस्मिल द्वार' का निर्माण और दूसरी ओर उनके घर-वालों की परछाही तक से भागना और उनकी निपूती बेवा माँ पर बदनामी की मार! एक तरफ शहीद परिवार सहायक फण्ड के नाम पर हजारों का चन्दा और दूसरी तरफ दवा और पथ्य के लिए पैसों के अभाव में अमर शहीद बिस्मिल के भाई का तपेदिक से घुट कर मरना! क्या यही है शहीदों की इज़्ज़त और उनकी पूजा! (**कुछ रुककर**) पर, माँ, इस, बेवफा दुनियाँ के रहते हुए भी बिस्मिल, तुम और तुम्हारा सारा कुटुम्ब भारत की आजादी के इतिहास में अजर अमर रहेंगे। (**कुछ रुककर गद्‌गद्‌ स्वर से**) फिर······फिर आऊँगा, माँ।

[**शिव वर्मा का शीघ्रता से प्रस्थान! माँ के फिर आँसू बह पड़ते हैं कुछ देर ये आँसू बहते रहते हैं, कुछ समय उपरान्त माँ अपनी अंधी आँखों के इन आँसुओं को अपनी फटी साड़ी के पल्ले से पोंछती हैं।**]

यवनिका

निकलते, वे श्रद्धा और भक्ति से भी वह पड़ते हैं। मैं तो रटा करता हूँ—

महसूस हो रहे हैं बादे फ़ना के झोंके,
खुलने लगे हैं मुझ पर इसरार ज़िन्दगी के।
यदि देशहित मरना पड़े मुझ को अनेकों बार भी,
तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊँ कभी।
हे ईश ! भारतवर्ष में शतबार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो।

और कल फाँसी पर चढ़ूँगा, माँ, यह कहते हुए—

मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरज़ू रहे।
जब तक कि तन में जान, रगों में लहू रहे,
तेरा ही जिक्र या तेरी ही जुस्तजू रहे।
मरते बिस्मिल रोशन लहरी अशफ़ाक अत्याचार से,
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से।

"I wish the downfall of the British Empire."

एक जेल अधिकारी : बहादुर बेटा ! बहादुर माँ ! बहादुर माँ का बेटा ही बहादुर हो सकता है।

[**यह दृश्य लुप्त होकर फिर से कोठरी की दीवाल आ जाती है।**]

शिव वर्मा : माँ, उस दिन समय पर विजय हुई थी तुम्हारी और आज तुम पर विजय पायी है समय ने। आघात पर आघात देकर इस काल ने तुम्हारे बहादुर दिल को भी कातर बना दिया है। जिस माँ की आँखों के दोनों तारे अस्त हो चुके हों, जिस पत्नी का सिंदूर, मस्तक की टिकली पुछ कर जिसका भाग्य सितारा भी डूब गया हो और जिसने अपने

में घुमाना चाहिए ! आपने क्या नहीं सहा, माँ और ऊपर से यह बदनामी !

[**माँ, फिर रो पड़ती हैं । कुछ देर निस्तब्धता ।**]

शिव वर्मा : आपके आज के आँसू देख करीब बीस वर्ष पहले के मुझे गोरखपुर जेल की कोठरी के सामने भाई बिस्मिल के आँसू और उस वक्त की आपकी बात याद आ रही है ।

[**कोठरी के पीछे की दीवाल हटकर उसके पीछे निम्नलिखित दृश्य दिखायी देता है ।**]

स्थान : गोरखपुर जेल की एक कोठरी

समय : अपराह्न

[**कोठरी जेल की कोठरियों के सदृश है । उसके बाहर रामप्रसाद बिस्मिल उनकी माता, जो उस समय वृद्धा न होकर प्रौढ़ा थीं, शिव वर्मा जो उस समय युवक थे तथा बिस्मिल के परिवार के ही एक-दो व्यक्ति और जेल के कुछ कर्मचारी दिखायी देते हैं । बिस्मिल के स्वरूप का वर्णन आवश्यक नहीं, क्योंकि उनके चित्रों से सर्व-साधारण परिचित हैं । बिस्मिल के नेत्रों में आँसू हैं ।**]

माँ : (**बिस्मिल के नेत्रों के आँसू देखकर ऊँचे स्वर में**) मैं तो समझती थी कि मेरा बेटा बहादुर है जिसके नाम से अंग्रेजी सरकार भी काँपती है । मुझे पता नहीं था कि वह मौत से डरता है। तुम्हें अगर रोकर ही मरना था तो फिजूल इस काम में आये !

बिस्मिल : माँ, मुझे गलत समझ रही हो । मैं मौत से नहीं डरता । माँ, मेरे ये आँसू, मेरी तुम्हारे प्रति जो श्रद्धा और भक्ति है उसने बहाये हैं । डर और दुःख से ही तो आँसू नहीं

[कुछ देर निस्तब्धता।]

माँ : (**हिचक-हिचककर**) रमेश के बाद उसके बाप को हमदर्दी दिखाने वालों से ऐसी चिढ़ हुई कि जो हमदर्दी दिखाने आता उसे वे सौ बातें सुनाते। न खाने को कुछ था और न पहनने को। जाड़े में रातें तक बिना कुछ ओढ़े कटतीं। एक दिन वे भी मुझे अनाथ और अकेली छोड़कर चल दिये। (**फिर रो पड़ती हैं।**)

[कुछ देर निस्तब्धता]

माँ : बेटा, यह पेट बड़ा पापी होता है। दोनों बेटे गये, मैं निपूती हुई। उनके बाप गये, मैं रांड हुई। फिर भी जीते जी को पेट में तो दो दाने अनाज के डालना ही था। इसलिए इस मकान के कुछ हिस्से को किराये पर उठाना तय किया। पर किराये पर तो तब उठता न जब कोई किरायेदार मिलता। पुलिस के डर से कोई किरायेदार भी नहीं आया और जब आया तब पुलिस का ही एक आदमी। पुलिस को मकान किराये पर देने से लोगों ने मुझे भी बदनाम किया कि मैं तो अब पुलिस की हो गयी हूँ।

शिव वर्मा : (**क्रोध से**) यह दुनियाँ कितनी स्वार्थी और कृतघ्न है! आप का सब कुछ गया, बेटे गये, उनके बाप गये, खुद अंधी हो गयीं, आखिर में बचा था नाम, सो वह भी चला गया!

माँ : बेटा, मुँह-मुँह पर यही बात है कि मैं पुलिस की हो गयी हूँ।

शिव वर्मा : (**और क्रोध से**) ऐसे चेहरों को काला कर, उनकी जीभ काट, उन्हें गधों पर चढ़ा, जूतों की माला पहना, शहर-शहर, कस्बों-कस्बों, गाँव-गांव, सड़कों-सड़कों और गलियों-गलियों

माँ : **(शिव वर्मा को अपनी ओर खींचकर सिर पर हाथ फेरते हुए)** अच्छा तुम वह हो, बेटा ? कहाँ थे अब तक ? मैं तो तुम्हें बहुत याद करती रही; पर जब तुम्हारा आना एकदम ही बन्द हो गया तो समझी तुम भी कहीं उसी रास्ते पर चले गये । **(अन्तिम शब्द कहते-कहते हृदय भर आता है, जो उनके गले के गद्गद् स्वर से जान पड़ता है। दो चार बूँद आँसू भी उनकी अंधी आँखों से टपक पड़ते हैं।)**

[**कुछ देर निस्तब्धता।**]

शिव वर्मा : माँ, बिस्मिल का छोटा भाई रमेश कहाँ है ?

[**रमेश का नाम सुनते ही माँ के आँखों से चौधारे आँसुओं की झड़ी लग जाती है। कुछ देर यही स्थिति रहती है। अतः कुछ समय तक निस्तब्धता।**]

माँ : **(कुछ देर बाद सँभलकर धीरे-धीरे)** बेटा, रमेश भी अब नहीं है। राम और रमेश के पिता की कोई बँधी हुई आमदनी तो थी नहीं।

शिव वर्मा : जानता हूँ ।

माँ : राम के बाद रमेश बीमार पड़ा। इलाज के लिए रुपया कहाँ ? दवा के बिना बीमारी जड़ पकड़ती गयी।

शिव वर्मा : ओह !

माँ : घर का सब कुछ बिक जाने पर भी रमेश का इलाज न हो पाया। न दवा और न पथ्य का खाना। उसे तपेदिक हो गया, बेटा, और एक दिन वह भी अपने बाप को और मुझे छोड़कर······**(फिर रो पड़ती हैं।)**

शिव वर्मा : **(गद्गद् स्वर से)** ओह······ओह ! **(उनकी भी आँखें भर आती हैं।)**

प्रथम दृश्य

स्थान : शाहजहाँपुर में बिस्मिल के मकान की एक कोठरी

समय : अपराह्न

[कोठरी से जान पड़ता है कि किसी गरीब से गरीब व्यक्ति का मकान है। कोठरी के तीन ओर की जो दीवालें दिखती हैं वे बहुत दिनों से न पुत सकने के कारण गंदी हो गयी हैं। यही हालत कोठरी की छत की है। परन्तु कोठरी की भूमि गोबर से स्वच्छ लिपी हुई है। एक ओर एक फटी पुरानी चटाई पर बिस्मिल की माँ, बैठी हुई हैं। वे वृद्धा हैं, दुबली-पतली एक सफेद फटी और थिगड़ैल साड़ी पहने हैं। कुछ गरीब गृहस्थी का सामान इधर-उधर अव्यवस्थित-सा पड़ा है। शिव वर्मा का प्रवेश। शिव वर्मा अधेड़ अवस्था के हैं। कुरता और ढीला पाजामा पहने हैं। शिव वर्मा आगे बढ़ माँ के पैर छूते हैं। स्पर्श से माँ को किसी व्यक्ति के आगमन का बोध होता है। वे टटोलती हुईं दोनों हाथ शिव वर्मा के सिर पर रख उन्हें आशीर्वाद देती हैं।]

माँ : तुम कौन हो ?

[शिव वर्मा कुछ चकपकाकर और हिचकते हुए कुछ उत्तर देना चाहते हैं जो उनकी मुद्रा से जान पड़ता है; परन्तु शब्द उनके कण्ठ से नहीं निकलते। वे जमीन पर बैठ जाते हैं।]

[कुछ देर निस्तब्धता।]

माँ : कहाँ से आये हो, बेटा ?

शिव वर्मा : (कुछ साहस से अटक-अटककर) गोरखपुर जेल में अपने साथ किसी को ले गयी थीं अपना बेटा बनाकर, याद है माँ ?

पात्र, स्थान, समय

मुख्य पात्र

१. अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की माता

२. शिव वर्मा

कल्पना में जो दृश्य और पात्र आते हैं और जो स्वप्न के सदृश नेपथ्य में दिखायी पड़ते हैं—

गोरखपुर जेल की कोठरी के सामने बिस्मिल की फांसी के एक दिन पूर्व बिस्मिल, उनकी माता, शिव वर्मा तथा बिस्मिल के कुछ नातेदार और जेल अधिकारी

स्थान : शाहजहाँपुर,

समय : १९४६ ईस्वी

जब माँ रो पड़ीं

गिरफ्तार कर कलकत्ते के मटिया बुर्ज भेजे गये और सरकार कंपनी बहादुर ने साही खानदान के लोगों को गिरफ्तार करने का हुकुम निकाला तब इस हुकुम के साथ ही सबकी नातेदारियाँ साही खानदान से टूट गयीं, अरे ! सच्चे और नजदीकी-नजदीकी नातेदारों की भी। सब दिशाओं से, सब तरफ से एक से ही सब्द सुनायी पड़े···'हम से वाजिदअली साह से क्या वास्ता' 'हमारी वाजिदअली साह से कोई रिस्तेदारी नहीं' इत्यादि। आज···आज, मिनिस्टर साहब, अधिकार की सत्ता की उसी गद्दी पर कांग्रेसी बैठे हैं, (चारों ओर बैठे हुए लोगों की ओर संकेत कर) हम सब कांग्रेसी हैं। (दाहनी ओर की दीवाल की खिड़कियों से दिखने वाली बाहर की भीड़ की ओर इशारा कर) वे सब कांग्रेसी हैं। परन्तु ······परन्तु भगवान् न करे अगर आप लोग भी गद्दी से उतरे, कांग्रेस के दिन भी फिरे तो······तो पता लगेगा कि कौन-कौन सच्चा कांग्रेसी है !

मिनिस्टर : (कुछ चकपका कर) मगर······मगर······

यवनिका

इस वखत……इस वखत की दूसरी वात है। इस वखत जो कभी कांग्रेसी नहीं थे, जो सदा कांग्रेस की बुराई और विरोध करते थे, वे भी कांग्रेसी हो गये हैं। इस स्कूल में बैठे हुए हम सब कांग्रेसी हैं, इतना ही नहीं, (दाहनी ओर की दीवाल की खिड़कियों में से दिखने वाली बाहर की भीड़ की तरफ संकेत करते हुए) बाहर की तमाम भीड़ भी कांग्रेसी है। कौन काँग्रेसी नहीं है? इस वखत की कांग्रेस की भगती देखकर मुझे अपने बप्पा की कही हुई एक कहानी याद आ जाती है। कहानी क्या एक सच्ची घटना है। कहिए तो कहूँ।

मिनिस्टर : (मुस्करा कर) जरूर……जरूर कहिए। मैंने तो सबको इसीलिए तकलीफ दी कि सबसे जान-पहचान हो, सब के भाव मालूम हों। फिर आप तो बुजुर्ग हैं, आप से तो कुछ शिक्षा ही मिलेगी।

वृद्ध देहाती : मिनिस्टर साहब, मेरे बप्पा उस वखत थे, जब इस अवध पर नवाब वाजिदअली साह का राज था। उन्होंने वाजिदअली साह का अच्छा समय देखा था। और उनकी गिरफ्तारी भी देखी थी। जिस वखत वाजिदअली साह तखत पर थे हमारे लखनऊ में सभी उनके खानदान से अपना-अपना नाता जोड़ते थे। ऐसा कौन था जिसकी दूर की या नजदीकी बादसाह से रिस्तेदारी न हो। यहाँ तक कि लखनऊ के इक्के वाले, तरकारी बेचने वाले, भड़भूँजे और मजूर भी अपने खानदानी सिजरे को कहीं-न-कहीं बादसाही खानदान से मिला ही देते थे। परन्तु दिनों के फेर से जब नवाब

स्थान : एक देहाती स्कूल का हाल

समय : तीसरा पहर

[हाल की तीन तरफ की दीवालें दिखती हैं, जो मिनिस्टर के दौरे के कारण पोत-पात कर साफ की गयी हैं। पीछे की दीवाल में कोई दरवाजा या खिड़की नहीं है। दाहनी ओर की दीवाल में तीन खिड़कियाँ हैं, जिनसे बाहर के देहातियों की भीड़ का कुछ भाग दिखायी पड़ता है। बायीं तरफ की दीवाल में भी तीन खिड़कियाँ हैं, जिनसे कुछ दूर पर गाँव के कुछ झोंपड़े और दूर-दूर तक लहलहाते हुए हरे-हरे खेत दिखायी देते हैं। हाल कांग्रेस के तिरंगे झण्डों और तिरंगी बन्दनवारों से सजाया गया है। हाल की जमीन पर देहाती जाजम बिछी है। पीछे की दीवाल के नजदीक एक छोटी-सी गद्दी है, जिस पर एक मसनद। दोनों खादी की चादर और खोली से ढके हुए हैं। गद्दी के सामने एक छोटा-सा तख्त है। तख्त पर खादी का रंगीन मेजपोश है, जिस पर दो काँसे के गिलासों में गुलाब, गेंदा, जासौन और मरुआ दोनों के फूलों तथा पत्तियों के गुलदस्ते हैं। गद्दी पर खद्दर के वस्त्र पहने हुए मिनिस्टर बैठा है। उसके सामने जाजम पर कुछ देहाती कार्यकर्त्ता खादी के कपड़े पहने बैठे हैं, पर कुछ की धोतियाँ मिल की हैं।]

एक वृद्ध देहाती : (जिसकी वेश-भूषा और बोली से पढ़ा-लिखा मालूम होता है।) हाँ, हाँ, मैं फिर कहता हूँ कि अगर आपको कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं से बातें करनी थीं तो यहाँ एक ही कार्यकर्ता है, (सबसे पीछे बैठे हुए एक वृद्ध की ओर संकेत कर) वे। मैंने तो जब से होस सम्भाला उन्हीं को कांग्रेस काज करते देखा—कांग्रेस के अच्छे, बुरे सब तरह के दिनों में।

पात्र, स्थान, समय

मुख्य पात्र

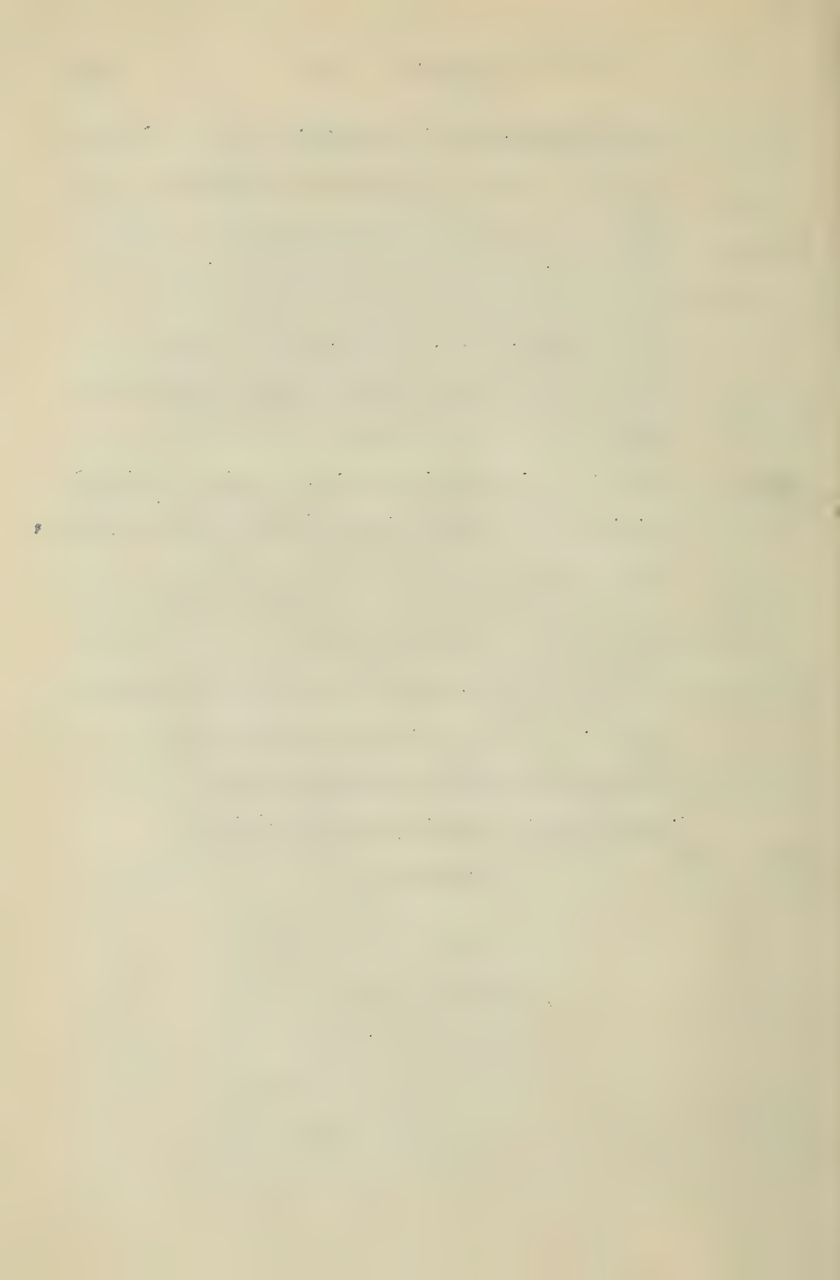
एक मिनिस्टर

एक देहाती

स्थान : पुराने संयुक्त प्रांत का एक गांव

समय : सन् ३७ की कांग्रेसी मिनिस्टिरियों का काल

सच्चा काँग्रेसो कौन ?



अंग्रेजी शिक्षा की सारी साध खत्म हो गयी। मैंने इतना पढ़ लिया है कि अपने माँ-बाप, अपने कुटुम्ब, अपनी जाति की सेवा कर सकूँ। आपने हमारी जाति की तरक्की के लिए क्या-क्या नहीं किया, और अन्त में अपनी जान तक को जोखिम में डाल यह उपवास कर डाला। जिसके संतरे के रस से आपने अपना अनशन तोड़ा वह अब ऐसा स्वार्थी नहीं रह सकता जैसा मैं था।

गाँधीजी : अरे ! तब तो तूने मुझे ठग लिया, बिठ्ठोबा, अपने सूखे संतरों से ठग लिया ! संतरे मुझे देकर बदले में मुझसे कुछ न लेना मैं तो ठगना मानता हूँ। और……और ठगा इतना ही नहीं, इन सूखे संतरों को देकर तू ने मुझे अपनी सारी जाति के लिए गिरवी रख लिया, इस……इस तरह गिरवी कि अगर में हरिजन सेवा कर इस कर्जे को इस जन्म में न चुका सका तो अगले जन्म में हरिजन हो, उनकी खिदमत कर चुकाऊँगा।

[अनेक व्यक्तियों की आँखों से आँसू बहने लगते हैं।]

यवनिका

पक्का बनिया, तुझसे संतरे लेने के बाद अब तुझे खत दूँगा।

बिट्ठोबा : पर······पर, बापू, कितने······कितने सूखे संतरे हैं !

गाँधीजी : (फिर हँसकर) और······और जो सिफारिशी खत तुझे मिलेगा, वह तो इन सूखे संतरों से भी सूखा होगा न !

[कुछ देर फिर निस्तब्धता। सब लोग एकटक बिट्ठोबा की ओर देखते रहते हैं। सरोजिनी नायडू बिट्ठोबा के संतरों के रस का प्याला लाती हैं। प्याला आधा भरा है। गाँधीजी फिर उठाये जाते हैं और उठकर उस रस को पीते हैं।]

जन समुदाय : (ऊँचे स्वर से) महात्मा गाँधी की जय ! भारत माता की जय ! हरिजन जिन्दाबाद।

एक मारवाड़ी : यह आगे पढ़ना चाहता है ?

गाँधीजी : हाँ, मुझसे चिट्ठी माँगता है किसी पर सिफारिश की।

मारवाड़ी : आपको चिट्ठी देने की जरूरत नहीं, इसकी पढ़ाई का भार मुझ पर रहा।

एक गुजराती : मैं इसे ऐसे स्कूल में भर्त्ती करा सब इन्तजाम कर दूँगा, जहाँ हरिजन पढ़ सकते हैं।

एक बोहरा : हाँ, हाँ, मैं तमाम इन्तजाम करा दूँगा; आपको खत देने की जरूरत नहीं।

रवीन्द्र : विश्व भारती भेज दीजिए।

एँड्रूज : यस, दैट वुड बी आल राइट।

बिट्ठोबा : पर, बापू, मैं अब नहीं पढ़ना चाहता।

गाँधीजी : (कुछ आश्चर्य से) नहीं पढ़ना चाहता !

बिट्ठोबा : नहीं, बापू। अंग्रेजी शिक्षा का मुझे मोह हो गया था। मैंने आज कई अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों को देखा। मेरी

प्यारेलाल सहारा देकर उठाते हैं। वे मसनद के सहारे बैठ जाते हैं। सरोजिनी नायडू प्याला आगे बढ़ाती हैं। गांधीजी हाथ आगे बढ़ाते हैं। पर एकाएक हाथ रोक लेते हैं। मानो उन्हें कुछ याद आ गया है।]

गांधीजी : मैंने एक हरिजन बच्चे से कहा था कि अगर मेरा अनशन टूटा तो उसके संतरे के रस से। उसका······उसका नाम था······

महादेव भाई : विठ्ठोबा।

गांधीजी : हाँ विठ्ठोबा! कहीं वह मिल जाता······

[गाँधीजी फिर लेट जाते हैं। सारे प्रांगण में सनसनी फैल जाती है। कानाफूसी सुन पड़ती है—ढूँढ़ो, ढूँढ़ो—लाओ, लाओ हाँ, हाँ, ढूँढ़कर लाओ, उस विठ्ठोबा को इत्यादि। इसी समय पसीने में लथपथ हांफते हुए विठ्ठोबा का प्रवेश। उसके हाथ में वे ही चार सूखे संतरे हैं। वह जल्दी-जल्दी आगे बढ़ता है। सब लोग उसे इस प्रकार रास्ता देते हैं मानो वह इस प्रांगण का सबसे महान् व्यक्ति हो। वह लपककर गाँधीजी के पलंग के पास पहुँचता है।]

विठ्ठोबा : बापू······बापू, आपने अनशन समाप्त······

गाँधीजी : (कहकहा लगा) (बीच ही में) समाप्त नहीं किया, विठ्ठोबा, तेरा रास्ता देख रहा था।

विठ्ठोबा : (संतरे गाँधीजी के पलंग पर रखते हुए) पर, बापू इन संतरों में एक प्याला रस तो नहीं निकलेगा। ये सूखे···सूखे ?

गाँधीजी : (एक संतरे को उठाकर) एक घूंट तो निकलेगा न!

[सरोजिनी नायडू संतरे उठाकर छीलना आरम्भ करती हैं। कुछ देर निस्तब्धता।]

गाँधीजी : (जोर से हँसकर, पर हँसी की ध्वनि से मालूम हो जाता है कि कितने कमजोर हो गये हैं।) विठ्ठोबा, मैंने कहा था न, मैं जिऊँगा, मरने वाला नहीं, और मैं बनिया हूँ,

उपसंहार

स्थान : यरवदा जेल का प्रांगण

समय : तीसरापहर

[वही प्रांगण है जो उपक्रम में था। आम के दरख्त के नीचे महात्मा गाँधी का पलंग है। गाँधीजी के मुख और शरीर से कमजोरी झलक रही है। पलंग के नीचे एक ओर पलंग के पाये से सटी हुई कस्तूरबा बैठी हैं। पलंग के नजदीक ही एक कुर्सी पर कवि रवीन्द्र बैठे हुए हैं। पलंग के निकट ही एक टेबिल रखी हुई है। उसके समीप खड़ी हुई सरोजिनी नायडू संतरे का रस निकाल रही हैं। टेबिल से कुछ दूर पर संतरे और मौसंबियों के टोकरे के टोकरे रखे हुए हैं, मौसंबी के अधिक। अभी भी इन टोकरों का आना बन्द नहीं हुआ है। प्रांगण में यथेष्ट भीड़ है। कुछ व्यक्ति कुर्सियों पर बैठे हुए हैं, कुछ जमीन पर और कुछ खड़े हैं। सभी समुदायों और समाजों के लोग हैं। स्त्रियाँ और बच्चे भी। इन्हीं में वल्लभ भाई पटेल, राजगोपालाचार्य, एण्ड्रूज, नरीमेन एम०सी० राजा, डाक्टर अम्बेडकर, राजभोज, अमृतलाल ठक्कर, महादेव भाई देसाई, प्यारेलाल और मिस रिहाना तैयबजी हैं। समुदाय में अनेक धनी मानी व्यापारी भी दिखायी देते हैं। गुरुदेव बंगला में एक पद गा रहे हैं।]

[गुरुदेव के पश्चात् रिहाना तैयबजी हिन्दुस्तानी में एक गीत गाती हैं।]

[रिहाना तैयब जी के बाद एण्ड्रूज एक अंग्रेजी गान गाते हैं।]

[अंग्रेजी गान के पश्चात् 'कोरस' के नीचे लिखा प्रसिद्ध पद गाया जाता है "वैष्णव जन तो तैने कहिए"।]

[यह गान समाप्त होते ही सरोजनी नायडू संतरे का रस भरा प्याला लेकर गाँधीजी के पलंग के पास पहुँचती हैं। गाँधीजी को महादेव भाई और

छठा दृश्य

स्थान : यरवदा जेल की एक कोठरी

समय : तीसरे पहर के समीप

[सरोजिनी नायडू एक कुर्सी पर बैठी हुई हैं। सारी कोठरी संतरे और मौसंबियों के टोकनों से भर-सी गयी हैं। टोकने अभी भी आते जाते हैं। टोकनों पर टोकने रखे जा रहे हैं, मौसंबी के टोकने अधिक हैं। टोकनों में किसी के साथ विजिटिंग कार्ड आते हैं, किसी के साथ चिट्ठियाँ। सरोजिनी नायडू इन कार्डों और चिट्ठियों को देखती जाती हैं। कभी-कभी उनके मुख से कार्डों के नाम तथा चिट्ठियों की इबारत के कुछ अंश भी निकल आते हैं।]

सरोजिनी : (एक कार्ड को पढ़ते हुए) ओ! सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास। (कुछ रुककर दूसरा कार्ड पढ़ते हुए) सेठ सूरजी वल्लभदास। (कुछ रुककर तीसरा कार्ड पढ़ते हुए) सर कावसजी। (कुछ रुककर एक चिट्ठी पढ़कर) ओ! सेठ वालचन्द के खुद के बगीचे की मौसंबियाँ! (कुछ रुककर एक कार्ड पढ़ते हुए) बिड़ला ब्रदर्स। (कुछ रुककर एक चिट्ठी पढ़कर) ओ! सर रहमत उल्ला के बाग की पहली फसल की मौसंबी। (कुछ रुककर एक कार्ड पढ़ते हुए) लेडी विट्ठलदास ठाकरसी। (कुछ रुककर फिर एक कार्ड पढ़ते हुए) ओह! हिज़ हाईनेस भोपाल। (फिर कुछ रुककर एक कार्ड पढ़कर) ओ! हर एक्सलैन्सी।

यवनिका

पाँचवाँ दृश्य

स्थान : पूना का फल बाजार

समय : मध्याह्न के उपरान्त

[**दृश्य वैसा ही है, जैसा दूसरे दृश्य में था, परन्तु चहल-पहल बहुत कम हो गयी है। संतरे तो पहले ही दुकानों पर नहीं दिखते थे, अब मौसंबियाँ भी नहीं हैं। बिठ्ठोबा का जल्दी-जल्दी प्रवेश।**]

बिठ्ठोबा : (**एक दुकानदार से**) भई ! आठ आने के संतरे या मौसंबी दे दो।

दुकानदार : सब बिक चुके।

बिठ्ठोबा : (**आगे बढ़कर दूसरे दुकानदार से**) आप दो !

दूसरा दुकानदार : मेरे पास भी नहीं हैं।

बिठ्ठोबा : (**निराश होते हुए, तीसरे दुकानदार से**) आप दे सकते हैं ?

तीसरा दुकानदार : एक भी नहीं।

बिठ्ठोबा : (**ऊँचे स्वर में**) अरे ! किसी के पास आठ आने के संतरे या मौसंबियाँ हैं ?

[**कोई दुकानदार कुछ नहीं बोलता। एक बूढ़ा-सा दुकानदार अपनी एक आलमारी में से चार सूखे से संतरे निकालता है।**]

वह दुकानदार : ये हैं, लेना हो तो आठ आने में चार दूँगा।

बिठ्ठोबा : (**संतरे उठाकर उन्हें देखते हुए**) पर......पर ये तो सूखे......सूखे हैं।

लघु यवनिका

तीसरा दुकानदार : और फिर ऐसी कार्रवाइयों से ये भिखमंगे और मुँह लगते हैं।

चौथा दुकानदार : हाँ, हाँ, इन्हें तो कुत्तों के माफिक दुतकार कर हटा देना चाहिए।

पाँचवाँ दुकानदार : अरे ! पागल······पागल कुत्तों के समान !

लघु यवनिका

कभी नहीं।......कितनी......कितनी देर हो रही है।......एक......सिर्फ एक प्याला रस चाहिए। तीन......तीन मौसंबियाँ।......आठ......आठ आने पैसे......

एक मुसलमान दुकानदार : (रहम भरे स्वर में) सचमुच तेरे संतरे के रस से महात्मा गांधी रोज़ा खोलेंगे ?

बिठ्ठोबा : (उस दुकानदार के पास खड़े होकर, उसके स्वर और मुद्रा के कारण अत्यन्त उत्सुकता से) आप खुद चलकर देख लीजिए। आप ही संतरे खरीदिए। आप ही यरवदा चलिए।

वही दुकानदार : (बिठ्ठोबा की ओर एकटक देखते हुए) नहीं, तेरी बात पर ही यकीन करने को जी चाहता है। (जेब से अठन्नी निकाल कर देते हुए) ले, ले जा ये आठ आने।

[बिठ्ठोबा उस अठन्नी को इस प्रकार गौर से देखता है, जैसे उसे अठन्नी न मिलकर गिन्नी मिली हो। उसकी मुद्रा ऐसी हो जाती है मानो वह समस्त सृष्टि की सम्पत्ति का मालिक हो गया हो। वह कुछ न कहकर उस मुसलमान दुकानदार की तरफ केवल देखता है, पर जैसी कृतज्ञता भरी है उसकी दृष्टि उस में अनगिनत शब्द भी इस कृतज्ञता को प्रकट नहीं कर सकते। कुछ सैकिण्ड खड़े रहने के बाद बिठ्ठोबा दौड़ता हुआ जाता है।]

एक दुकानदार : (मुसलमान दुकानदार से) सेठ साहिब, ठग लिया उस भिखमंगे ने आप को।

दूसरा दुकानदार : हाँ जी, न जाने कितने बड़े-बड़े आदमियों ने संतरे मौसंबियाँ भेजी होंगी। उनके रस से अनशन न तोड़ा जाकर इस भिखमंगे के फलों के रस से तोड़ा जायगा।

एक दुकानदार : **(कुछ ऊँचे स्वर से)** यह भीख माँगने का नया तरीका है।

[इस दुकानदार के भाषण भर की देर थी, अब तो मानो सबकी जबान खुल गयी, जो उनकी मुद्राओं से जान पड़ता है।]

दूसरा दुकानदार : "उदरपूर्ति हित, बहुकृत वेषा।"

तीसरा दुकानदार : मैं तो कहता हूँ, विलायत के सदृश इस देश में भी भीख माँगना, कानून से बन्द किया जाना चाहिए।

चौथा दुकानदार : सेण्ट्रल असेम्बली में हमारी तरफ से जो प्रतिनिधि हैं, उनसे इस विषय पर कानून बनवाने के लिए मैंने तो न जाने कितनी बार कहा।

पाँचवाँ दुकानदार : अपने प्रांत की असेम्बली के एम० एल० ए० तो इस पर बिल बना ही रहे हैं।

बिठोबा : **(जल्दी-जल्दी एक दुकान से दूसरी दुकान पर घूमते हुए कुछ उन्माद भरे से स्वर में)** मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ।......सच कह रहा हूँ !......मानिए...... मानिए सच कह रहा हूँ। बापू ने सचमुच मुझसे कहा है, कि वे, मेरे संतरे के रस से, अपना उपवास समाप्त करेंगे।......कोई भी चले......चले मेरे साथ। पैसा मुझे नहीं चाहिए।......खरीद दे संतरे। ......और......और फिर संतरे भी मुझे न दे।... ...वही ले......ले चले उन्हें यरवदा जेल में। देख ले......देख ले बापू उन्हीं के रस से अपना अन-शन खत्म करते हैं या नहीं।......अरे ! वे मेरे संतरे के रस के लिए ठहरे रहेंगे। कभी......कभी उपवास समाप्त न करेंगे। मेरे पहुँचे बिना......

दूसरा दुकानदार : (बीच ही में चिल्ला कर) चल, चल, आगे बढ़, नहीं तो……

बिठोबा : (कुछ और आगे बढ़, तीसरे दुकानदार से) एक कृपा कीजिएगा ?

तीसरा दुकानदार : (बड़ी बेरुखी से) क्या ?

बिठोबा : मुझे आठ आने की जरूरत है।

तीसरा दुकानदार : सो होगी, मैं क्या करूँ !

बिठोबा : आपको ईश्वर ने माना है, एक गरीब की ख्वाहिश……

तीसरा दुकानदार : (एकदम उत्तेजित हो) बोहनी तो हुई नहीं, और तू आया भीख माँगने ! इन भिखमंगों के मारे तो नाकों दम हो गया है।

दूसरा दुकानदार : अरे, कुछ लोगों का तो यह धंधा हो गया है।

तीसरा दुकानदार : कुछ लोगों का, जैसे ये थोड़े से हों ? कुछ लोगों का क्या, न जाने कितनों का।

चौथा दुकानदार : दिन-भर और रोज इसी तरह के भिखमंगे आया करते हैं।

बिठोबा : (चिल्ला कर) न तो मेरा धन्धा भीख माँगना है, और न मेरे समान भिखमंगे रोज और दिन-भर आते ही हैं। मुझे आठ आने चाहिए संतरे या मौसंबी खरीदने को। बापू आज अपना अनशन मेरे फलों के रस से खत्म करने वाले हैं।

[कुछ देर के लिए एक विचित्र प्रकार की निस्तब्धता छा जाती है। कुछ दुकानदार एक दूसरे की तरफ देखते हैं।]

चौथा दृश्य

स्थान : पूना का एक बाजार

समय : दोपहर

[**बीच में सड़क है और दोनों ओर दुकानें। दुकानों में कई तरह की चीजें सजी हैं। दुकानों पर दुकानदार बैठे हैं। सड़क पर लोग आ-जा रहे हैं। बिठोबा खड़ा हुआ एक दुकानदार से बात कर रहा है। उसकी परेशानी बहुत बढ़ गयी है, जो उसके मुख से जान पड़ती है।**]

बिठोबा : आज शाम के पहले ये आठ आने लौटा दूँगा, वचन देता हूँ, आप को।

दुकानदार : (**क्रोध से**) एक बार कह दिया, दो बार कह दिया, मेरी दुकान में लेन-देन नहीं होता।

बिठोबा : सो होता भी होता तो आठ आने का कभी नहीं, यह तो मैं जानता हूँ। परन्तु……

दुकानदार : (**और क्रोध से**) अबे, जाता है या पीटना पड़ेगा!

बिठोबा : (**कुछ आगे की दुकान पर खड़े हो**) आप मेहरबानी कर मुझे आठ आने देंगे?

दूसरा दुकानदार : (**आश्चर्य से**) क्या?

बिठोबा : मुझे आठ आने चाहिए।

दूसरा दुकानदार : सो तो मालूम हुआ, पर मैं जानना यह चाहता हूँ कि क्या आपने ये पैसे मेरी दूकान पर जमा किये थे?

बिठोबा : अगर मेरी इतनी औकात होती……

प्रोफेसर : **(क्रोध से)** भीख माँगने को आया है ! हाथ, पैर, आँख, नाक, सब दुरुस्त होने पर भी भीख !

बिठोबा : प्रोफेसर साहिब······

प्रोफेसर : **(बीच ही में और क्रोध से)** बार-बार प्रोफेसर साहिब ! प्रोफेसर साहिब कहकर खुशामद करने से भीख नहीं मिलेगी। **(चिल्ला कर)** भला चंगा होकर भी भीख माँगता है, शर्म है शर्म ! सवेरे-सवेरे भीख ! उफ ! फिर उससे भीख जिसको हर महीने गिनती के टके मिलते हैं। ओफ ! ओह। गधा ! एकदम गधा ! बिलकुल गधा ! भीख माँगना है तो बाजार जा उनके पास जो—
"हाट में हैं टाट पै, बैठे हुए जो बाट में"
आठ के हैं साठ करते, रह पुराने ठाठ में

(जल्दी से प्रस्थान।)

लघु यवनिका

यह महीना है, हैजा का मौसम, पर हैजा केस में हम बिना पाँच रुपया पेशगी लिये नहीं जाता।

बिठ्ठोबा : पर मैं आपको किसी केस में ले चलने को नहीं आया……

डाक्टर : तब कोई सार्टीफिकेट लेने आया। प्राइवेट बात भीतर चलकर कर सक्टा……

बिठ्ठोबा : मैं आया हूँ बापू के उपवास के सम्बन्ध में……

डाक्टर : (आश्चर्य से) बापू का उपवास ! कैसा उपवास ? कौन बापू ?

बिठ्ठोबा : गाँधी जी ने अभी जो उपवास किया है……

डाक्टर : ओ ! हमको पेपर पढ़ने का फ़ुरसत नहीं। हम नहीं जानता किसका उपास। (भीतर जाते हुए) कैसा उपास……

बिठ्ठोबा : पर……पर……सुनिए……सुनिए, डाक्टर साहिब……

डाक्टर : (भीतर से) हमारा पास फिजूल वक्त नहीं !……यू गेट आउट फ्राम दि कंपाउण्ड……

[बिठ्ठोबा कुछ देर सिर झुकाए खड़ा रहता है, फिर आगे बढ़ प्रोफेसर की तख्ती पढ़ता है।]

बिठ्ठोबा : प्रोफेसर साहिब ! प्रोफेसर साहिब !

[एक दुबले और ठिगने अधेड़ अवस्था के आदमी का भीतर से प्रवेश, वह कमीज और धोती पहने है, पैरों में पूने की मराठी चप्पल। आँखों पर मोटा चश्मा।]

बिठ्ठोबा : (जल्दी से) प्रोफेसर साहिब, मैं आपसे आठ आना पैसा भीख माँगने आया हूँ।

एडवोकेट : मामूली मारपीट ? अच्छा। पर हम पहले फीस लेकर तब बात करता है। हमारा कायदा। तुम गरीब आदमी; रुपया, आठ आना, चार आना पहले कुछ भी पेशगी फीस दो, तब बात......

बिट्ठोबा : लेकिन मैं मुकदमा लेकर नहीं आया हूँ, एडवोकेट साहिब......

एडवोकेट : (क्रोध से पैर पटक कर) तब काहे को आया है ? हमारा वक्त फिजूल बर्बाद करने ? डेम ! स्टुपिड !

बिट्ठोबा : मैं आया हूँ एडवोकेट साहिब, बापू के......

एडवोकेट : (उसी प्रकार क्रोध से) कौन बापू ? कहाँ का बापू ?

बिट्ठोबा : महात्मा गाँधी......

एडवोकेट : (भीतर जाते हुए उसी प्रकार क्रोध भरे स्वर में) ओ ! वो तो इस हंगर स्ट्राइक में मर जायगा, बिलकुल मर...... (भीतर प्रवेश।)

बिट्ठोबा : नहीं, नहीं सुनिए......सुनिए तो......

[एडवोकेट नहीं लौटता। बिट्ठोबा कुछ रुककर आगे बढ़ डाक्टर का साइन बोर्ड पढ़ता है।]

बिट्ठोबा : डाक्टर साहिब ! डाक्टर साहिब !

[एक अधेड़ अवस्था का मोटा और ठिगना-सा मनुष्य अंग्रेजी कपड़े पहने भीतर से निकलता है।]

डाक्टर : हैजे का केस ? महार दिखता !

बिट्ठोबा : हाँ, डाक्टर साहिब, महार हूँ।

डाक्टर : ओ ! तुम लोग इतना गन्दा रहता, मरा ढोर खाता, गन्दा पानी पीता, इसीलिए हैजा फैलता। सप्टेम्बर का

तीसरा दृश्य

स्थान : पूना में एक बड़े से मकान का सामना

समय : प्रातःकाल

[**मकान के सामने का कुछ भाग दिखायी देता है। उसके सामने छोटा-सा बगीचा है। बगीचे के पीछे की ओर मकान का बरामदा है, जिसमें बीच-बीच में लकड़ी के तख्ते लगा-लगा कर कई हिस्से किये गये हैं। बरंडे की कार्निस पर एक बड़े काले तख्ते पर सफेद अक्षरों से लिखा है।—"सरस्वती कॉलनी"। बरामदे के हर हिस्से पर उस भाग में रहने वालों के नाम लिखे हैं। तीन भाग दिखायी देते हैं, और तीनों भागों पर क्रमशः लिखा हुआ है—बी० डी० देसाई बी० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट; डाक्टर सी० आर० भोपटकर एम० बी० बी० एस०; प्रोफेसर एन० के० भटनागर एम० ए०। बिट्ठोबा का प्रवेश। वह एडवोकेट के हिस्से के बरंडे के सामने खड़े होकर साइन बोर्ड को पढ़ता है।**]

बिट्ठोबा : (**ऊँचे स्वर में**) एडवोकेट साहिब ! एडवोकेट साहिब !

[**भीतर से एक दुबला पतला ऊँचा-सा अधेड़ अवस्था का आदमी पश्चिमी ढंग के कपड़े पहने निकलता है। बिट्ठोबा उसे प्रणाम करता है।**]

बिट्ठोबा : एडवोकेट साहिब, मैं······

एडवोकेट : (**बीच ही में**) कोई मुकदमा लाया है ? महार दिखता है ?

बिट्ठोबा : हाँ, महार हूँ, एडवोकेट साहिब, पर······

एडवोकेट : शराब पीकर मारपीट हुआ ? जरूर शरीर केस, या खून ?

बिट्ठोबा : नहीं, नहीं······

बिठोबा : (पाँचवें दुकानदार के पास जाकर गिड़गिड़ाते हुए) अगर आप मुझे तीन मौसंबी दे दें……

पाँचवाँ दुकानदार : मुफ्त में ? अबे, यह बाजार है, लंगर या खैरात-खाना नहीं।

[बिठोबा के मुँह से दीर्घ निश्वास निकलता है।]

लघु यवनिका

एक खरीदार : हँसतरिया नहीं, हिस्टीरिया ।

पहला दुकानदार : जो कुछ हो, पर वह बीमारी होती है, फिट आते हैं, हँसने के रोने के ।······क्या बात है ?

चौथा दुकानदार : अरे, भाई, बात ही ऐसी है, जो सुनेगा वही हँसेगा, और मुझसे भी ज्यादा । (बिट्ठोबा की ओर संकेत कर) हजरत फर्मा रहे हैं कि महात्मा गाँधी ने वादा किया है कि वह हुजूर के संतरों के रस से अपना रोजा खोलेंगे । कहिए यह हँसने की बात है या नहीं ? (फिर जोर से हँसता है ।)

[कुछ लोग हँसते हैं]

बिट्ठोबा : (सहमे हुए स्वर से) आप लोगों में से कोई भी चल कर देख लें कि मैं झूठ बोलता हूँ या सच । अगर मेरी बात सच निकले तो फिर पैसे न लीजिएगा ।

तीसरा दुकानदार : अरे, चल, चल, बहुत से ऐसे लफंगे आया करते हैं । इसके संतरों से महात्मा गांधी रोजा खोलेंगे !

एक ईसाई : (कई दुकानदारों को इकट्ठा सम्बोधन कर) क्यों संतरे या मौसंबियाँ हैं ?

कुछ दुकानदार : (एक साथ) संतरे नहीं, मौसंबियाँ हैं । दो रुपया दर्जन ।

ईसाई : (कुछ आश्चर्य से) दो रुपया डजन ?

चौथा दुकानदार : थोड़ी देर में तीन रुपया हो जाएँगी ।

ईसाई : अच्छा, दे दो तुम्हारी दुकान में जितनी हों ।

[चौथा दुकानदार मौसंबी गिनता है । एक मजदूर टोकना लेकर आता है ।]

[वह दुकानदार मौसंबी गिनता है। एक मजदूर टोकना लेकर आता है। बिठ्ठोबा का जल्दी-जल्दी प्रवेश।]

बिठ्ठोबा : एक प्याला रस के लिए कितनी मौसंबी चाहिए।

पहला दुकानदार : एक-एक खरीद कर निचोड़ता जा, प्याला भर जाने पर मालूम हो जायगा कि कितनी चाहिए। (हँसता है।)

[कुछ लोगों के कहकहे।]

बिठ्ठोबा : अरे, भाई, मुझ गरीब को तो उतने ही संतरे चाहिए, जिनसे एक प्याला भर जाय।

चौथा दुकानदार : संतरे तो सारे बाजार के बिक गये। मौसंबियाँ मिल सकतीं हैं। शायद तीनेक मौसंबियों में प्याला भर जायगा, तीन मौसंबियाँ मिलेंगी आठ आने में।

बिठ्ठोबा : आठ आने में तीन मौसंबी ?

चौथा दुकानदार : अलह सुबह आ जाता तो छै पैसे में मिल जातीं।

बिठ्ठोबा : और पैसा अभी देना होगा ?

चौथा दुकानदार : यह फल बाजार है, चोर बाजार नहीं, जहाँ उधारी चलती है।

[बिठ्ठोबा चौथे दुकानदार के कान में धीरे से कुछ कहता है। बिठ्ठोबा की बात तो सुनायी नहीं देती, पर उसकी बात पूरी होते होते वह दुकानदार इतनी जोर से हँसता है और लगातार हँसता रहता है कि अनेक दुकानदारों और खरीदारों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित होता है। बिठ्ठोबा सहम-सा जाता है।]

पहला दुकानदार : अरे, तुम तो ऐसे हँस रहे हो जैसे……उसे कौन-सी बीमारी कहते हैं, जिसमें आदमी एकदम हँसता-रोता है……देखो……हँसतरिया……

[दूसरा दुकानदार मौसंबी गिनता है। एक मजदूर टोकना लेकर पहुँचता है।]

पहला व्यापारी : (दूसरे दुकानदार से) अच्छा, भाई, दे दो मान-मान पैसे में दो दर्जन मौसंबी।

तीसरा दुकानदार : अब तो दो आने की मौसंबी मिलेगी, सेठजी।

वही व्यापारी : (झुंझलाकर) जिस भाव में भी देना हो दे दे।

तीसरी दुकानदार : (गिनते हुए) अरे, सेठजी, फ्रूट मार्केट भी कभी-कभी सट्टा बाजार और घुड़-दौड़ का मैदान हो जाता है।

चौथा दुकानदार : और आज......आज जब दुनियाँ के सबसे बड़े आदमी का सबसे अहम तारीखी रोज़ा खोला जा रहा है, तब......तब तो......

एक पारसी : (चौथे दुकानदार से) कुछ सन्तरे हैं ?

चौथा दुकानदार : जी नहीं, मौसंबियाँ हैं, और भाव है दो आने फी मौसंबी।

पारसी : एक डज़न दो।

[दुकानदार मौसंबी गिनता है।]

एक बोहरा : (दूसरे दुकानदार से) संतरे या मौसंबी ?

दूसरा दुकानदार : सब बिक गये।

बोहरा : (तीसरे दुकानदार से) संतरे या मौसंबी ?

तीसरा दुकानदार : संतरे नहीं; मौसम नहीं; थोड़े वे मौसम के भी थे, पर बिक गये; मौसंबी हैं; पर दो रुपया दर्जन।

बोहरा : अभी-अभी तो दो आने फी मौसंबी बिकती थी और अब दो रुपया डज़न ?

तीसरा दुकानदार : बिलकुल अलह सुबह तो छै आना डजन ही थीं।

बोहरा : अच्छा, जितनी हों, दे दो।

व्यापारी : तीन-तीन पैसे में देना हो तो दो दर्जन दे दो।

वही दुकानदार : (बेपरवाही से) जी नहीं, और कोई दुकान देखिए।

व्यापारी : (आगे बढ़कर दूसरे दूकानदार से) कहो, मौसंबी क्या भाव दीं ?

दूसरा दुकानदार : पाँच-पाँच पैसे की एक-एक।

व्यापारी : अरे, अरे, तुम्हारा पड़ौसी तो चार-चार पैसे में एक-एक देता है ?

दूसरा दुकानदार : तो ले लीजिए न उसी से।

दूसरा व्यापारी : (पहले दुकानदार से) मौसंबी क्या भाव ?

पहला दुकानदार : छः-छः पैसे की एक-एक।

वही दूसरा व्यापारी : दे दो, जितनी हों।

[दुकानदार गिनने लगता है। एक मजदूर टोकना लेकर आता है। पहला व्यापारी लौटता है।]

पहला व्यापारी : हाँ, दो, दो दर्जन मौसंबी चार-चार पैसे में।

पहला दुकानदार : (हँसकर) सेठ जी, किसका मुंह देखकर चले थे मेरी तो बिक गयीं सब।

वही व्यापारी : (दूसरे दुकानदार के पास जाकर) दो, पाँच-पाँच पैसे में दो दर्जन मौसंबी।

दूसरा दुकानदार : कीमत बढ़ गयी, सेठ, छः छः पैसे।

व्यापारी : (तीसरे दुकानदार की ओर बढ़कर) दो दर्जन मौसंबी पाँच-पाँच पैसा।

कुछ दुकानदार : (एक साथ) मौसंबी का भाव सात-सात पैसा फी मौसंबी।

तीसरा व्यापारी : (दूसरे दुकानदार से) गिन दे सारी मौसंबी जिस भाव में भी देना हो।

दूसरा दृश्य

स्थान : पूना का फल बाजार

समय : प्रातःकाल

[बाजार का कुछ भाग दिखायी देता है। दोनों ओर ऊँचे चबूतरों पर फलों की दुकानें हैं और बीच में रास्ता। दुकानों में फल सजे हुए हैं और दुकानदार बैठे हुए फल बेच रहे हैं; बीच के मार्ग में खरीदार खड़े हुए फल खरीद रहे हैं, कुछ खरीदकर आगे बढ़ते हैं तथा कुछ खरीदने को आते हैं। बेचने वालों में मुसलमान अधिक हैं, और खरीदारों में सभी प्रकार के लोग हैं। इधर-उधर टोकने उठाने वाले मजदूर भी दिखायी पड़ते हैं। मौसंबियाँ खूब बिक रही हैं और देखते-देखते इनका भाव भी बढ़ता जाता है। बाजार में काफी हल्ला-गुल्ला है। दूर के स्वर की तो भनभनाहट-सी आती है पर नजदीक की बातें स्पष्ट सुनायी देती हैं।]

एक दुकानदार : (एक व्यापारी से) जी, नहीं एक-एक आने से कम में एक-एक नहीं मिलेगी।

व्यापारी : पर, भाई, अभी-अभी तुमने तीन-तीन पैसे में एक-एक बेची है।

वही दुकानदार : कुछ देर पहले तो दो-दो पैसे में भी एक-एक बेची थी।

व्यापारी : फिर ?

वही दुकानदार : फिर क्या, सेठ जी, रुई और अलसी के पाटिये पर तो भाव-ताव इससे भी कहीं ज्यादा घटते-बढ़ते रहते हैं।

[बिट्ठोबा की आँखों में आँसू भर आते हैं। उसका सिर झुक जाता है। माँ-बाप दोनों उसकी ओर देखते हैं। कुछ देर निस्तब्धता। एकाएक बिट्ठोबा का जल्दी से प्रस्थान।]

बाप : (ऊँचे स्वर में) अरे ! कहाँ······कहाँ चला ?

नेपथ्य से : (बिट्ठोबा का स्वर) सन्तरों का इन्तजाम करने और फिर यरवदा।

बाप : (खाँसते हुए माँ से) यह लड़का······यह लड़का तो पागल हो गया।

लघु यवनिका

बाप : तब ?

बिट्ठोबा : बापू मेरे संतरों के रस से अपना अनशन खत्म करेंगे।

बाप : (अत्यन्त आश्चर्य से) तेरे संतरों के रस से गाँधी उपास खतम करेगा ? अरे ! तू पागल तो नहीं हो रहा है।

बिट्ठोबा : (भर्राए हुए स्वर से) नहीं, नहीं, बापू ने······खुद बापू ने मुझसे कहा था कि वे अनशन मेरे संतरों के रस से तोड़ेंगे। जल्दी दीजिए मुझे चार आने; नहीं तो मुझे वहाँ पहुँचने में देर हो जायगी।

बाप : जैसे तेरे पहुँचने की वहाँ बाट देखी जायगी। (खाँसता है।)

बिट्ठोबा : (उसी प्रकार के स्वर में) हाँ, जरूर······जरूर देखी जायगी उन्होंने खुद······खुद उन्होंने······बापू ने मुझसे कहा था कि वे मेरे संतरे के रस से उपास खतम करेंगे। (गिड़गिड़ा-कर) दीजिए······दीजिए मुझे चार आने।

बाप : जैसे गाँधी के उपास के लिए चार आने मैंने जमा करके रखे हों।

बिट्ठोबा : (और गिड़गिड़ाकर) इस बार दे दीजिए, सिर्फ इस बार। इसके बाद मैं कभी नहीं माँगूँगा, कभी नहीं। पढ़ना छोड़ दूँगा, कमाऊँगा। आपको मदद दूँगा, पर······पर अभी······ अभी चार आने दे दीजिए।

बाप : पर, बेटा, हों भी तो। चार आने दूर रहे, घर में चार पैसे नहीं हैं।

बिट्ठोबा : (माँ से) माँ, तुम······तुम दो।

माँ : (आँखों में आँसू भरकर) बेटा, मेरे पास होते तो मैं तेरी यह गिड़गिड़ाहट देख सकती थी ? मेरे पास तो चार पाई भी नहीं।

बिठ्ठोबा : क्या ?

दूसरा : गाँधी का उपास आज खतम हो जायगा।

बिठ्ठोबा : (जल्दी से रुककर) अच्छा !

तीसरा : हाँ, बहुत से हरिजन लड़कों को लड्डू बँटेंगे।

पहला : और तुझे तो पाँच सेर सीरनी मिलेगी, पूरी पाँच सेर।

दूसरा : हाँ, तू तो जहल गया था न ?

माँ : यह जहल काहे को जायगा।

बाप : हाँ, इसने कौन-सा कसूर किया है।

दूसरा : कसूर नहीं, यह गाँधी से मिलने गया था।

तीसरा : अच्छा, हम चले यरवदा मिठाई लेने; तू भी आ जाना।

[लड़कों का प्रस्थान।]

बिठ्ठोबा : (जो अब तक गंभीर विचार में डूबा हुआ था, एकाएक बाप से) मुझे चार आने दीजिए।

बाप : (आश्चर्य से) क्या······क्या कहा ?

बिठ्ठोबा : (जल्दी से) चार आने······मुझे चार आने चाहिए।

बाप : चार आने ? (खाँसकर) सोलह पैसे ? अड़तालीस पाई ?

बिठ्ठोबा : हाँ, चार आने में इतने सन्तरे मिल जायेंगे न जिससे एक प्याला रस निकल आवे।

बाप : (और आश्चर्य से) संतरे ? एक प्याला रस ? अरे ! यहाँ भुँजे चने नहीं हैं और तुझे संतरे चाहिए ? संतरों का रस ? एक प्याला रस ? यह है स्कूल की पढ़ाई का फल ! बाप कोल्हू के बैल सा पेरनी करे, माँ रूखे-सूखे टुकड़ों को तरसे, भाई-बहन बूँद-बूँद दूध के लिए बिलबिलाएँ और तुझे चाहिए संतरे ! चार आने के संतरे !

बिठ्ठोबा : मुझे······मुझे अपने लिए नहीं चाहिए।

नहीं हुए और सूख कर हो गये हैं, काँटा। दिन भर काम; रात भर खों-खों! कहाँ तक कमायें।

बाप : सबसे बड़ी थी तेरी बहन। जब तक ब्याह-शादी नहीं हुई उसने तो कुछ कमा के मदद भी की। तेरे पर सारी आसाएँ लगाये बैठा था, पर तुझे पढ़ने से ही फुरसत नहीं। (खाँसता है।)

माँ : फिर पढ़कर बाबू भी हो गया तो चीरना तो ढोर ही पड़ेंगे। इस देश में हम महार और कर ही क्या सकते हैं।

विट्ठोबा : बस, माँ, यही तो मुझे बरदाश्त नहीं होता। हम क्या नहीं कर सकते? मैं ही पढ़-लिख कर न जाने क्या-क्या करने की सोच रहा हूँ। अब हम हरिजन हैं, माँ हरिजन!

बाप : (घृणा से हँसकर) उस गाँधी ने कह दिया हरिजन और हमने मान लिया कि हमारी जात सब जातों से ऊँची भगवान् की जात हो गयी। हमारे संसरग से चाहे भगवान् का नाम नीचा हो जाय, पर भगवान् का नाम मिलने पर भी हम ऊँचे नहीं हो सकते। (खाँसकर) आज जिस तरह भंगी, चमार, कहकर गाली दी जाती है, उसी तरह कुछ दिन में हरिजन कहकर गाली दी जायगी।

माँ : बेटा, छोड़ ये बातें। कमा कर मदद कर बाप की। मैं तो इन बच्चों के मारे बे काम सी हूँ। ये अकेले इतनों का पेट कैसे पालें।

बाप : (खाँसते हुए) फिर भी तुम कितना करती हो। (विट्ठोबा से) देख, बेटा……

[कुछ हरिजन बालकों का प्रवेश]

एक आगन्तुक : अरे, विट्ठोबा, सुना……सुना तूने?

पहला दृश्य

स्थान : पूना की एक हरिजन वस्ती में विट्ठोबा के घर की परछी

समय : प्रातःकाल

[एक ओर कुछ छोटे-छोटे घरों की बाहरी भागों के कुछ हिस्से दिखायी पड़ते हैं। दूसरी तरफ बिट्ठोवा की घर की परछी है। परछी की छत टेढ़ी-मेढ़ी बल्लियों पर है और उस पर छाये हुए टूटे-फूटे खपरे तथा टीन के टुकड़े भी दिखायी देते हैं। परछी की जमीन गोबर से लिपी और साफ सुथरी है। जमीन पर एक ओर टूटी-सी खाट पड़ी है, दूसरी तरफ एक चक्की और उखली गड़ी है। बिट्ठोबा और उसके माँ-बाप बैठे हुए हैं। माँ-बाप अधेड़ अवस्था के हैं; रंग में साँवले तथा शरीर में दुबले पतले। फटे से कपड़े पहने हैं। एक तीन-चार साल का बच्चा चक्की के साथ खेल रहा है। एक डेढ़-दो वर्ष की बच्ची घुटने चलती हुई इधर-उधर घूम रही है। एक छै महीने का बच्चा माँ का दूध पी रहा है। सब बच्चे नंगे हैं। कितना गरीब कुटुम्ब है, यह मकान, उसके सामान, सबके शरीरों तथा कपड़ों से मालूम हो जाता है। कभी-कभी नेपथ्य से अलग-अलग तरह के स्वर और बात-चीत सुन पड़ती है; जिससे जान पड़ता है कि पड़ोस के घरों व गली में कुछ लोग बोल रहे हैं; पर बातें समझ में नहीं आतीं।]

बाप : पहले कहता था चौथी मराठी करके छोड़ दूँगा, फिर बोला मिडिल पास होने पर, अब इन्ट्रन्स की बात करता है। (**खाँस कर**) ना, बाबा, ना, मेरे पास एक पैसा नहीं।

माँ : खाने को दाने नहीं; कपड़ों के लाले! स्कूल के लिए पैसा कहाँ से आवे, बेटा, इनकी तरफ भी तो देख; चालीस पूरे

ग्रौर मैं तुमसे सन्तरे माँग रहा हूँ। लेने के देने पड़ गये न ? (**फिर जोर से हँसकर**) विठ्ठोबा मैं बनिया हूँ, पक्का बनिया !

बिठ्ठोबा : (**भर्राए हुए स्वर में**) बापू !......बापू !......

यवनिका

बिट्ठोबा : (**महादेव भाई की ओर इस प्रकार देख, जैसे किसी बेरहम आदमी को देखा जाता है, जल्दी से महात्मा गाँधी की तरफ देखते हुए**) तो······तो यह······कम से कम यह तय रहा कि······

गाँधीजी : (**मुस्कराते हुए बीच ही में**) कि अगर मेरा अनशन टूट सका, तो जिस दिन मेरा उपवास खत्म होगा, उसी दिन तुम्हें सिफारिशी खत मिल जायगा। (**सिर हिलाकर हँसते और महादेव भाई की ओर देखते हुए**) अच्छा, तो अब तुम्हें मेरे जेलर का हुक्म मानना चाहिए।

[**बिट्ठोबा खड़ा होता है। उसके खड़े होने के ढंग से मालूम हो जाता है कि वह कितनी निराशा से खड़ा हुआ है। फिर वह धीरे से गाँधीजी के पैर छूता है और घूमकर जाने लगता है। इन कृतियों से भी वैसी ही निराशा टपकती है।**]

गाँधीजी : (**कुछ विचारते हुए, थोड़े ऊँचे स्वर में**) हाँ, क्या नाम बताया तुमने अपना ? बिट्ठोबा ?

बिट्ठोबा : (**लौटकर**) हाँ, बापू, बिट्ठोबा महार।

गाँधीजी : देखो, बिट्ठोबा, तुम समझते हो कि मैं जीने वाला थोड़े ही हूँ, और मर गया तो तुम्हारा ख़त गया, पर······पर, मैं मरने वाला नहीं, मैं तो जिऊँगा, जीना चाहता हूँ, और अगर मेरा अनशन टूटा तो वह तुम्हारे सन्तरे के रस से खत्म होगा।

[**बिट्ठोबा कुछ चकपका कर गाँधीजी की ओर देखता है, पर कुछ कहता नहीं।**]

गाँधीजी : (**कहकहा लगाकर**) समझ गये न ? तुम अपनी आगे की पढ़ाई के लिए मुझ से सिफ़ारिशी चिट्ठी माँगने आये थे,

उपक्रम

स्थान : यरवदा जेल का प्रांगण

समय : तीसरा पहर

[एक ओर जेल की बैरक का कुछ हिस्सा दिखायी देता है; दूसरी तरफ जेल की ऊँची दीवाल का कुछ भाग; बीच में एक छोटा-सा आम का दरख्त। छोटा होने पर भी वृक्ष घना है और उसकी छाया में महात्मा गाँधी पलंग पर लेटे हुए हैं। उनके पलंग के निकट जमीन पर साधारण-सी चीजों को बिछा-बिछा कर, जैसे—चटाइयाँ, डोरिया आदि, कुछ व्यक्ति बैठे हुए हैं; इनमें मुख्य हैं कस्तूरबा गाँधी, वल्लभ भाई पटेल, सरोजिनी नायडू, नरीमैन, महादेव भाई देसाई और बिठ्ठोबा। बिठ्ठोबा की उम्र चौदह-पंद्रह साल के लगभग है। रंग श्याम, शरीर दुबला, कपड़े मैले और यहाँ-वहाँ फटे हुए तथा थिगड़ैल; कपड़ों में कुरता, धोती और टोपी। बिठ्ठोबा गाँधी जी के पलंग के बहुत नजदीक बैठा हुआ उन से बातें कर रहा है। सबका ध्यान इस बात-चीत की तरफ आकर्षित है।]

बिठ्ठोबा : (अत्यन्त दीनता से) मैं बहुत बड़ी उम्मीद से आया था, बापू।

गाँधीजी : (कहकहा लगाकर) हाँ, सो तो मैं जानता हूँ।

बिठ्ठोबा : और आप मुझे खाली हाथ लौटा रहे हैं।

गाँधीजी : (फिर जोर से हँसकर) हाँ, हाथ तो खाली हैं; पर मैंने वादा तो किया है न ? उस वादे को कहाँ भरा है।

बिठ्ठोबा : (निराश मुद्रा से विचारते हुए) हाँ, वादा······वादा तो ठीक है, बापू, पर······पर······

महादेव भाई : (घड़ी देखते हुए) अच्छा, अब तुम्हारा वक्त हो गया।

पात्र, स्थान, समय

मुख्य पात्र :

महात्मा गाँधी

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कस्तूरबा गाँधी

वल्लभभाई पटेल

राजगोपालाचार्य

सरोजिनी नायडू

एण्डूज

नरीमैन

एम० सी० राजा

डाक्टर अम्बेडकर

राजभोज

अमृतलाल ठक्कर

महादेव भाई देसाई

प्यारेलाल

बिट्ठोबा : एक हरिजन बालक

मिस रिहाना तैयबजी

स्थान : यरवदा जेल

समय : १९३२ ई०

सूखे सन्तरे

मँझले राजा : नहीं हुई तो हम कंगालों से भी बदतर हैं।

बड़े राजा : इसीलिए तो नहीं हुई कि हम कंगालों से कहीं बढ़कर हैं।

राजमाता : बेटा, तेरी बात समझ में नहीं आती।

बड़े राजा : माँ, हमें पिनसन मिलती है, हम महाराजाधिराज राज-राजेश्वर संग्रामशाह और महारानी दुर्गावती के कुल के हैं। हमारी बड़ी इज़्ज़त है, हमारा बड़ा मान है। हमारी आमदनी चाहे तीन पैसा रोज ही हो, पर हमें कंगालों की रोजनदारी, दो आना रोज, कैसे मिल सकती है? हमारी भरती कंगालों में कैसे की जा सकती है?

[बड़े राजा ठठाकर हँसते हैं और लगातार हँसते रहते हैं। राजमाता के आँसू बहते हैं और मँझले राजा उद्विग्नता से बड़े राजा की ओर देखते हैं।]

यवनिका

राजमाता : (उत्सुकता से) क्या, बेटा ?

मँझले राजा : तुम धीरज रखकर बैठो तो बताऊँ।

राजमाता : (बैठते हुए) जल्दी बता, बेटा, मेरा कलेजा मुँह को आ रहा है।

मँझले राजा : माँ, अकाल के कारन सरकार ने काम खोला है न ?

राजमाता : हाँ, जहाँ कंगाल काम करते हैं।

मँझले राजा : पर जानती हो, माँ, उन्हें क्या मिलता है ?

राजमाता : क्या ?

मँझले राजा : हमसे बहुत जादा। चार रुपया महीना, एक-एक को दो आने रोज।

राजमाता : अच्छा !

मँझले राजा : हम सात हैं। बड़े भाई ने अरजी दी है कि हम सबको अकाल के काम में जगह दी जाय। माँ, वह अरजी मंजूर हो गयी तो हम में से एक-एक को दो-दो आने रोज, सुना, दो दो आने रोज सबको मिलाकर अट्ठाईस रुपया महीना, तीन सौ छत्तीस रुपया साल, सुना, तीन सौ छत्तीस रुपया साल मिलेगा।

[बड़े राजा का खेत की ओर से प्रवेश। वे अपने भाई से मिलते-जुलते हैं। करीब २८ वर्ष की उम्र है। वेष-भूषा उन्हीं के सदृश है। वे अत्यन्त उदास हैं। आकर राजमाता के पास बैठ जाते हैं।]

राजमाता : बेटा, मँझला कहता था कि तूने सरकार को एक अरजी दी है ?

बड़े राजा : (लम्बी साँस लेकर) हाँ दी थी, माँ।

राजमाता : (उत्सुकता से) फिर क्या हुआ, बेटा, मंजूर हो गयी ?

बड़े राजा : नहीं।

के विजेता संग्रामशाह के कुल को बावन छदाम भी नसीब नहीं ।

[मँझले राजा का खेत की तरफ से प्रवेश। मँझले राजा की उम्र २२, २३ वर्ष की है। रंग साँवला और शरीर दुबला-पतला तथा ठिगना है। एक मैली और फटी-सी धोती को छोड़कर और कोई वस्त्र शरीर पर नहीं है। हाथ में थोड़े से गेहूँ के दाने हैं, जो बहुत पतले पड़ गये हैं। उसे देखकर मँझली रानी घर के भीतर चली जाती है।]

मँझले राजा : (गेहूँ के दानों को राजमाता के सामने पटककर भर्राये हुए स्वर में) माँ, सब हार में झिरी पड़ गयी। बीज निकलना भी कठन है।

राजमाता : (लम्बी साँस लेकर) तब······तब······तो वसूली भी न होगी।

मँझले राजा : वसूली······वसूली······माँ, लगान तो इस साल सरकार ने मुल्तवी कर दिया।

राजमाता : (एकदम घबड़ाकर खड़े होते हुए) मुल्तवी हो गयी ?

मँझले राजा : हाँ, माँ, आज ही हुकम आया है।

राजमाता : तो सिलापरी गाँव से जो एक सौ वीस रुपया बचते थे, वे भी न आयेंगे ?

मँझले राजा : इस बरस तो नहीं, माँ।

राजमाता : फिर हम लोग क्या खायेंगे, पियेंगे ?

मँझले राजा : पिनसन के सरकार एक सौ बीस रुपया साल देती है न ?

राजमाता : सात जीव एक सौ बीस रुपया साल में गुजर करेंगे ? महीने में दस रुपये, एक जीव के लिए तीन पैसे रोज ?

मँझले राजा : बड़े भाई ने एक उपाय और किया है, माँ।

अच्छा, राजा जी, और बाई जी, मेरे साथ चलो, मैं तुम दोनों को सब चीजें मँगा दूँगी।

[दोनों को लेकर बड़ी रानी घर के भीतर जाती है। मँझली रानी राजमाता के निकट सरककर अपनी फटी साड़ी से राजमाता के आँसू पोंछती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

मँझली रानी : माँ, थोड़ा तो धीरज रखो।

राजमाता : बहुत जतन करती हूँ, बेटी, धीरज रखने के बहुत जतन करती हूँ; पर जब इन बच्चों की ऐसी बातें सुनती हूँ, तब तो हिरदे में ऐसा सूल उठता है जैसा भूखे पेट और नंगे तन रहने पर भी नहीं। (कुछ ठहरकर) और, बेटी, एक बात जानती है ?

मँझली रानी : क्या, माँ ?

राजमाता : ये बच्चे ही इन तस्वीरों को लिये घूमते हैं और ऐसा सोचते और कहते हैं, यह नहीं, तेरे मालक और बड़ी बहू के मालक भी जब छोटे थे तब वे भी इसी तरह इन तस्वीरों को लिये घूमते और यही सब कहते फिरते थे। और वे ही नहीं, मेरे मालक, उनके बाप, और उनके बाप, और उनके बाप, सब यही सोचते और कहते थे।

मँझली रानी : आह !

[राजमाता लम्बी साँस लेती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

राजमाता : बेटी, संग्रामशाह और दुर्गावती को पीढ़ियाँ बीत गयीं। गिरती में सबने बढ़ती की सोची। बीती को सोचा, भवस के लम्बे-लम्बे विचार किये, पर वरतमान किसी ने न देखा और आज······(कुछ रुककर) आज, बेटी, बावनगढ़

नहीं हुईं । संग्रामशाह ने बावन गढ़ जीते तो क्या हुआ, दुर्गावती उनसे कम वीर नहीं थीं ।

बड़ी रानी : हाँ, संग्रामशाह ने बावन गढ़ जीत कर वीरता दिखायी तो दुर्गावती ने अपने प्रान देकर ।

मँझली रानी : हाँ, जीत में वीरता दिखाना उतना कठन नहीं, जितना हार में ।

[**राजमाता रो पड़ती हैं ।**]

बड़ी रानी : माँ, फिर वही, फिर वही ।

छोटे राजा : (**राजमाता के पास जाकर उनके निकट बैठकर**) माँ, तुम रोती क्यों हो ? मैं संग्रामशाह से भी बड़ा वीर बनूँगा । उनने बावन गढ़ जीते थे, मैं बावन शहर जीतूँगा ।

राजकुमारी : (**राजमाता के पास जाकर**) और, माँ, मैं दुर्गावती से भी बड़ी वीर बनूँगी ।

छोटे राजा : (**संग्रामशाह की तस्वीर दिखाते हुए**) देखो, माँ, संग्रामशाह से मैं कितना मिलता-जुलता हूँ। अगर तुम मेरी इस फटी धोती की जगह जैसे कपड़े ये पहने हैं, वैसे पहना दो, मुझे तलवार मँगवा दो, और ऐसा ही घोड़ा खरीद दो, तो मैं अकेला बावन शहर जीत लाऊँ ।

राजकुमारी : और, माँ, देखो, मैं दुर्गावती से कितनी मिलती हूँ । अगर तुम मुझे भी दुर्गावती जैसे कपड़े पहना दो, हथियार मँगवा दो, और जैसे हाथी पर ये बैठी हैं, वैसा हाथी मँगवा दो, तो मैं भी दुर्गावती से बड़ी वीर बन जाऊँ ।

[**राजमाता के और अधिक आँसू गिरने लगते हैं ।**]

बड़ी रानी : (**छोटे राजा और राजकुमारी को हाथ पकड़ कर उठाते हुए**)

बड़ी रानी : कहाँ तक रंज करोगी, माँ, और रंज करने से फायदा ही क्या होगा ?

राजमाता : जानती हूँ, बेटी, पर जानने से क्या होता है, जो बात रंज की है, उस पर रंज आये बिना नहीं रहता।

मँझली रानी : पर, माँ, जो बात बस की नहीं, उस पर रंज करना फजूल है।

राजमाता : बिना बस की बात ही तो जादा रंज पहुँचाती है।

[घर के भीतर से छोटे राजा और राजकुमारी हाथ में एक एक तस्वीर लिये हुए आते हैं। छोटे राजा की उम्र क़रीब बारह वर्ष की है। वह साँवले रंग और ठिगने कद का दुबला-पतला लड़का है। एक मैली और फटी-सी धोती पहने है, जो घुटने के ऊपर तक चढ़ी है। ऊपर का बदन नंगा है। राज-कुमारी करीब आठ साल की साँवले रंग की दुबली-पतली लड़की है। एक मैली-सी लाल रंग की फटी हुई साड़ी पहने है। साड़ी इतनी फट गयी है कि उसके शरीर का अधिकांश हिस्सा साड़ी में से दिखता है।]

छोटे राजा : माँ, **(राजकुमारी की ओर इशारा कर)** यह कहती है दुर्गावती ने बावन गढ़ जीते थे, मैं कहता हूँ संग्रामशाह ने। फैसला तुम करो, मैं सच्चा हूँ या ये ?

राजकुमारी : हाँ, तुम फैसला कर दो, माँ।

राजमाता : बेटी, संग्रामशाह ने बावन गढ़ जीते थे, दुर्गावती ने नहीं।

छोटे राजा : देखा, मैंने पहले ही कहा था, यह वीरता आदमी कर सकता है, औरत नहीं।

[राजकुमारी उदास हो जाती है।]

राजमाता : **(राजकुमारी को उदास देखकर)** उदास हो गयी, बेटी, पर हमारे कुल में तो औरतें आदमियों से कम बीर

स्थान : मिलापरी गाँव में राजमाता का घर

समय : सन्ध्या

[एक तरफ को राजमाता के घर की खपरेल परछी दिखायी देती है, जिसके कई खपरे टूट गये हैं। परछी में एक ओर घर के भीतर जाने का दरवाजा दिखता है, जिसके किवाड़ों की लकड़ी भी टूट गयी है। यह दरवाजा खुला हुआ है और इसके अन्दर घर के छोटे से मैले-कुचैले कोठे का एक हिस्सा दिखायी देता है। परछी के सामने मैदान है। मैदान के एक तरफ़ दूर पर गाँव के कुछ झोंपड़े दिखते हैं और दूसरी तरफ खेत का एक हिस्सा, जिसमें छोटी-छोटी विरल सूखी-सी फसल खड़ी है। परछी में एक फटे से बोरे पर राजमाता बैठी हैं। उनकी उम्र क़रीब ५० साल की है। रंग साँवला है। मुख और शरीर पर कुछ झुर्रियाँ पड़ गयी हैं। बाल आधे से अधिक सफेद हो गये हैं। शरीर बहुत दुबला-पतला है। शरीर पर वे एक मैली-सी लाल बुन्देलखंडी सूती साड़ी पहने हैं, जो कई जगह से फटी हुई है और जिसमें कई जगह थिगड़े लगे हैं। राजमाता के पास बड़ी रानी और मँझली रानी जमीन पर ही बैठी हुई है। दोनों साँवले रंग की हैं। बड़ी रानी की उम्र करीब पच्चीस वर्ष और मँझली रानी की करीब बीस वर्ष की है। दोनों युवतियाँ होते हुए भी कृश हैं और उनकी आँखों के चारों तरफ़ के गढ़ों तथा सूखे ओंठों से जान पड़ता है कि उन्हें पेट भर खाने को नहीं मिलता। दोनों राजमाता के समान ही लाल रंग की साड़ियाँ पहने हैं, जो कई जगह से फटी हुई और थिगड़ैल भी हैं। दोनों के हाथों में मोटी-मोटी लाख की एक एक चूड़ी है। तीनों में बातचीत हो रही है। राजमाता की आँखों में आँसू भरे हैं।]

पात्र, स्थान

पात्र

राजमाता : सिलापरी गाँव की मालगुज़ारिन, राजगोंड वंश की राजमाता

बड़े राजा
मँझले राजा
छोटे राजा } राजमाता के तीन पुत्र

बड़ी रानी : बड़े राजा की पत्नी

मँझली रानी : मँझले राजा की पत्नी

राजकुमारी : राजमाता की पुत्री

स्थान : सिलापरी गाँव (ज़िला दमोह, मध्य प्रदेश)

नोट : इस नाटक की कथा पुराने मध्यप्रान्त के प्रसिद्ध पुरातत्व-वेत्ता रायबहादुर हीरालाल ने लेखक को बतायी थी। कथा एक सत्य घटना है।

कंगाल नहीं

तीसरा हिन्दुस्तानी : बलवाई कहीं का !

एक अंग्रेज : बांडलो......बांडलो......और टाँग डो इसी नजडीक का डरखट पर।

[सिपाही उस्तादजी और अजीजन की तरफ़ बढ़ते हैं। उस्तादजी बिना कुछ कहे या हिले-डुले उसी प्रकार मूर्ति के सदृश खड़ा-खड़ा एक टक अजीजन के मृत शरीर को देखता रहता है।]

यवनिका

जा सकता। मैं भी तेरे पीछे-पीछे ही आ रहा हूँ। तेरे पैदा होने के बाद से आज तक सिर्फ़ तेरे लिए जिया और तेरे बिना अब दुनिया में रह भी नहीं सकता, पर आँख बन्द होने के पहले एक बात और सुनती जा, जिसे सुनने की तुझे बड़ी ख्वाहिश थी, और जिसे तू आज तक न सुन सकी।

[नेपथ्य का शोर नजदीक आता है। अज़ीज़न उत्सुकता भरी दृष्टि से उस्तादजी की तरफ़ देखती है।]

उस्तादजी : तू अपने वालिद को जानना चाहती थी न ? मैं······ मैं ही हूँ तेरा वालिद, बेटी, और ऐसी······ऐसी बेटी पाकर मैं जो फ़ख्र महसूस कर रहा हूँ वह दुनियाँ की नज़र में पाक दामन कही जाने वाली किसी बेटी के भी किसी बाप को महसूस नहीं हो सकता।

[अज़ीज़न अपनी दोनों भुजाएँ उस्तादजी के गले में डाल देती है। उसके ओंठों पर एक अद्भुत प्रकार की मुस्कराहट दौड़ जाती है, पर मुँह से कोई शब्द नहीं निकलता। उसके नेत्रों में आँसू भर आते हैं और आँसू भरी हुई आँखें उसी वक्त बन्द हो जाती हैं। आँखें बन्द होते ही उसकी भुजाएँ भी उस्तादजी के कंठ से नीचे गिर जाती हैं। प्रकृति के सारे रक्त वर्ण की अज़ीज़न अब प्रतीक-सी जान पड़ती है और उस्तादजी भी उस खून से धीरे-धीरे लाल होता जा रहा है। नेपथ्य का शोर बहुत नजदीक आ जाता है। उस्तादजी एकटक अज़ीज़न को देखता रहता है। कुछ ही देर में कुछ अंग्रेज और हिन्दुस्तानी सिपाहियों का प्रवेश।]

एक हिन्दुस्तानी : (दोनों को देखकर) आख़िर······न भाग सके, मिल गये न ?

दूसरा हिन्दुस्तानी : और ख़ून कर डाला साथी का ?

मेरे साथ जैसा सलूक किया जायगा, उसे आप जानते ही हैं। अब मैं फिर से अपने जिस्म पर उस तरह का हमला नहीं सह सकती। उस्तादजी, होश सँभालते ही ......हमेशा ही मुझे तो आदमियों के यह हैवानी हमले सहने पड़े हैं, दिल के रोते हुए भी ओंठों से हँसते-हँसते, दिल में हमले करने वाले पर नफ़रत......हद दरजे की नफ़रत रहते हुए भी ज़बान से मीठी-मीठी, मुहब्बत भरी बातें करते-करते, लेकिन अब मुझसे यह बर्दाश्त न हो सकेगा। आज़ादी की लड़ाई की जन्नत में ज़िन्दगी भर का वह दोज़ख भूल गयी थी; फिर से वह दोज़ख़, नहीं, उस्तादजी। **(कमर से कटार निकालते हुए)** आपने मुझे इसी सालगिरह पर यह सौगात दी थी। यही, उस्तादजी, मेरी इस दुनियाँ की तमाम तकलीफ़ों को ख़त्म कर मुझे वहाँ ले जायगी जहाँ आदमी औरत की बिना मर्जी के उसके जिस्म पर इस तरह के हमले नहीं कर सकता। आज़ादी की इस लड़ाई में छोटा-मोटा हिस्सा लेकर शायद मैं इतनी पाक हो गयी हूँ कि ख़ुदा से यह दुआ माँग सकूँ......**(कटार हृदय में मार लेती है।)**

उस्तादजी : **(अजीजन के गिरते हुए शरीर को हाथों से सँभालते हुए, अजीजन की छाती से खून का फव्वारा-सा निकल रहा है।)** तेरे लिए शायद अब दूसरा कोई रास्ता भी न था, और......और इसीलिए जो कुछ तू करने जा रही थी उससे मैंने तुझे रोका भी नहीं। तू जन्नत को जायेगी, अज़ीज़न सीधी जन्नत। और अगर तू जन्नत नहीं जा......नहीं जा सकती तो दुनियाँ में कोई भी नहीं

की, और मन तो दे ही दिया था, उसके बिना यह दोनों काम थोड़े ही हो सकते थे।

अजीजन : पर, उस्तादजी, मैं यह सब किसकी वजह से कर सकी? दरअसल तो आप इसके सबब हैं।......फिर एक बात और है।

उस्तादजी : क्या?

अजीजन : ......यह सब मैंने इज़्ज़त आबरू हासिल करने, तवारीख़ में अपना नाम लिखाने के लिए ही किया। दौलत सारी इज़्ज़त की बुनियाद समझी जाती है, उसके रहते हुए भी जब मैं अपनी बेइज़्ज़ती देखती तब साँप-सा लोट जाता ......मेरे दिल पर, लेकिन......अब तो मुझे कुछ और ही जान पड़ता है।

उस्तादजी : कैसा?

अजीजन : मुझे मालूम पड़ता है, उस्तादजी, कि इज़्ज़त आबरू और तवारीख़ में अपने नाम की ख्वाहिश तो छोटी...... बहुत-ही छोटी चीज़ थी। जो असली चीज़ थी, वह तो मुझे यह सब कर चुकने पर मिली है। कैसी अजीब किस्म की तसल्ली मिली है मेरे दिल को, उस्तादजी। अपना सब कुछ देकर, अपना सब कुछ खोकर, अपने को मिटाकर ही शायद ऐसी तसकीन पायी जा सकती है।

[**नेपथ्य में दूर पर शोरगुल सुन पड़ता है। अजीजन और उस्तादजी दोनों चौंककर पीछे की तरफ़ देखने लगते हैं। कुछ देर दोनों नहीं बोलते।**]

अजीजन : उस्तादजी, भागते-भागते हम लोग यहाँ तक आ गये, पर अब न बच सकेंगे। और......और पकड़े जाने पर

रंगी आवरू ख़ाक में मिल जाती है। तुम्हारा भी यही हाल है, अज़ीज़न।

अजीजन : (गद्गद् स्वर से) आप...आप ऐसा समझते हैं, उस्तादजी ?

उस्तादजी : बेशक; और जो मैं समझता हूँ, वह एक दिन तमाम मुल्क समझेगा, सारी दुनियाँ मानेगी। तुम्हारा मुकाबला किया जायगा इन इज़्ज़तदार राजा, नवाब, सेठ, साहूकार और महन्तों से। कहाँ यह होंगे और कहाँ तुम !

अजीजन : (उसी प्रकार के स्वर में) उस्तादजी, उस्ताद जी !

उस्तादजी : ......यह आजादी की लड़ाई कामयाब हुई हो, या न हुई हो, लेकिन जिन्होंने इसमें हिस्सा लिया है, उनके नाम कभी भी न भुलाये जा सकेंगे। इतना बड़ा मुल्क, इतनी बड़ी हिन्दू मुस्लिम कौम हमेशा तो गुलाम रहेगी नहीं, एक न एक दिन आज़ादी मिलेगी ही और......उस दिन तुम सब के नाम इस मुल्क की तारीख़ में किस रंग की रोशनाई से लिखे जायेंगे यह आज नहीं कहा जा सकता; सुनहरी रोशनाई तो फीकी......बहुत ही फीकी जँचेगी। जिसने अपना तमाम सोना ही नहीं, जगमाते हुए ज़ेवरात, और ज़ेवरात ही नहीं अपने रहने का मकान तक नीलाम कर इस लड़ाई में मदद पहुँचायी, जिसने अपने जिस्म को भी इसी काम में लगा दिया, उसका नाम क्या सिर्फ़ सुनहरी रोशनाई ही से लिखा जा सकता है ?...... अज़ीज़न,......अज़ीज़न, तुमने क्या नहीं किया ? तन, मन, धन सब कुछ, हाँ, सब......सब तुमने मुल्क को दे दिया। सारा धन दिया, तन से लड़ने वालों की ख़िदमत

उस्तादजी : इतना ही नहीं, अगर नीचे और नापाक फ़िरके में कोई ऊँचा और पाक दिल रखने वाला अपने फ़िरके को छोड़ कर उठना चाहता है तो भी ऊँचे और पाक फ़िरकों वाले उसको नीचा और नापाक फिरका छोड़ने नहीं देते, ऐसी-ऐसी कार्रवाइयाँ करते हैं कि उसे अपने ही फ़िरके में सड़ते रहना पड़ता है। और इस तरह की कार्रवाइयाँ वह लोग करते हैं जो इन ऊँचे और पाक फ़िरकों में रहने की वजह से ऊँचे और पाक माने जाते हैं, लेकिन दर-असल बड़े ही नीचे और नापाक दिल रखने वाले हैं।

अज़ीज़न : अच्छा !

उस्तादजी : अक्सर कामयाबी तो इन्हीं को मिलती है, क्योंकि सारे के सारे ऊँचे और पाक समझे जाने वाले फ़िरके इनकी मदद करते हैं, लेकिन······लेकिन, अज़ीज़न······

अज़ीज़न : लेकिन ?

उस्तादजी : लेकिन कभी-कभी इन मसोसे हुए······इन कुचले हुए नीचे और नापाक समझे जाने वाले फ़िरकों में ऐसे······ ऐसे दिल के इन्सान पैदा हो जाते हैं कि उन्हें दबाकर रखा ही नहीं जा सकता। कई दफ़ा ऐसा वक्त आ जाता है कि इन्हें भी अपने ऊँचे और पाक दिल के अरमानों के मुताबिक काम करने का मौका······मौका मिल जाता है और उस वक्त नीचे और नापाक समझे जाने वाले फ़िरकों के ऊँचे और पाक दिल वालों का ऊँचे और पाक समझे जाने वाले फ़िरकों के नीचे और नापाक दिल वालों से मुकाबला हो जाता है। जिसकी इज़्ज़त होनी चाहिए उसी की इज़्ज़त होती है और रंगे सियारों की

उस्तादजी : ख़ुदगरज़ों की नज़र में, जिनकी आँखें इनकी दौलत चकाचौंध करती है; लेकिन जानती हो सच्ची नज़र किसकी होती है ?

अज़ीज़न : किसकी ?

उस्तादजी : जो वक्त गुज़र जाने पर सारे मामले को देखकर, तोल कर तवारीख़ लिखता है, और उनकी निगाह में तुम जैसी की जगह……

अज़ीज़न : (गद्‌गद्‌ स्वर से) आप……आप ऐसा समझते हैं ?

उस्तादजी : हाँ, अज़ीज़न, इसमें मुझे थोड़ा भी शक नहीं है। जिन हालात में तुम पैदा हुईं, पाली-पोसी बड़ी की गयीं, उन हालात में जिसे तुम गन्दा पेशा कहती थीं, वह न करना शायद मुमकिन न था, तुम्हारा-सा दिल, ऊँचा दिल, पाक दिल होने पर भी नहीं।

अज़ीज़न : ऐसा ?

उस्तादजी : हाँ, अज़ीज़न। बात यह है कि दुनियाँ में इन्सान ने इस तरह के फ़िरके बना लिये हैं और उनमें कुछ इस तरह ऊँचे और नीचे, इस तरह पाक और नापाक, समझे जाते हैं कि ऊँचे और पाक समझे जाने वाले फ़िरकों में नीचे और नापाक दिल रखने वाले भी ऊँचे और पाक ही माने जाते हैं। दुनियाँ आँख बन्द कर उनकी इज़्ज़त करती है। वह आबरू वाले समझे जाते हैं। इसी तरह नीचे और नापाक समझे जाने वाले फिरकों में ऊँचे और पाक दिल रखने वाले भी नीचे और नापाक ही माने जाते हैं, उनकी कोई इज़्ज़त और आबरू नहीं।

अज़ीज़न : (विचारते हुए) हाँ, यह तो ठीक है।

उपसंहार

स्थान : कानपुर के नजदीक गंगा का एक सुनसान किनारा

समय : सन् १८५८ की एक संध्या

[गंगा बह रही है । सूर्य तो नहीं दिखता, पर डूबते हुए सूर्य की लाल किरणें गंगा की धारा को लाल बना रही हैं । नजदीक के दरख़्तों की हरी-हरी चिकनी पत्तियों पर भी यह लालिमा झलक रही है । आकाश में आज बादल के टुकड़े हैं । ये भी सूर्य की किरणों से रक्त रंग पा रहे हैं । सारे दृश्य पर लोहित वर्ण का साम्राज्य-सा है । अज़ीज़न और उस्तादजी का प्रवेश । अज़ीज़न आज मर्दाने वेष में हैं । सिर पर साफा है । बदन पर चपकन और पाजामा । कमर बंधी हुई है और कमर में उस्तादजी की सौगात में दी हुई कटार लगी है । इस वेष में भी अज़ीज़न बहुत खूबसूरत दीख पड़ती है । उस्तादजी अपनी साधारण वेष-भूषा में हैं ।]

अज़ीज़न : तो ख़त्म......ख़त्म हो गया सब कुछ । आज़ादी की मतवाली फौजें हार गयीं और इन अंग्रेजों, मुट्ठी-भर अंग्रेजों की जीत हो गयी । कितने हिन्दुस्तानी मारे गये, वह भी जो नहीं लड़े थे, बूढ़े और मासूम बच्चे भी ! कैसा कत्लेआम हुआ !

उस्तादजी : लेकिन यह मुट्ठी-भर अंग्रेजों की जीत नहीं, यह है कौम फ़रोश......मुल्क फ़रोश, खुद गरज़ हिन्दुस्तानियों की जीत । ओह ! अगर हिन्दुस्तानियों ने अंग्रेजों की मदद न की होती......।

अज़ीज़न : पर, उस्तादजी, यह हिन्दुस्तानी तो बड़े इज़्ज़तदार हैं, बड़े आबरू वाले ।

दूसरा दृश्य

स्थान : अज़ीज़न के मकान का हाता

समय : उसी दिन की दोपहर

[सूर्य नहीं दिखता, परन्तु सूर्य का प्रकाश फैला हुआ है। पीछे की तरफ़ मकान के बाहरी भाग का कुछ हिस्सा दिखायी देता है, जिससे मकान कितना बड़ा है, इसका अन्दाज़ा हो जाता है। दाहनी ओर सजावट का सामान रखा हुआ है, जिसका कुछ हिस्सा दिखायी देता है और मालूम होता है कि दाहनी तरफ यह बहुत दूर तक चला गया है। इसी के पास बीच की ओर कुछ हटकर सोने चाँदी का सामान है और इस सामान के पास ही जड़ाऊ मोती, सोने और चाँदी के जेवर। इस सारे बेशकीमती सामान के नज़दीक एक चौकी पर अज़ीज़न बैठी हुई है। वह एक सादी सूती साड़ी और वैसा ही सलूका पहने है। उसके शरीर पर एक भी जेवर नहीं है। भूषणों से रहित उसकी स्वाभाविक सुन्दरता में और भी खूबी आ गयी है। प्रसन्नता से उसका चेहरा दमक रहा है। उसी के निकट एक दूसरी चौकी पर उस्तादजी बैठा हुआ है। उसी के पास एक ऊँचे तिपाये पर मुन्शीजी खड़ा हुआ नीलाम कर रहा है। बायीं तरफ मनुष्यों का एक समुदाय है। उसका कुछ हिस्सा दिखायी पड़ता है और मालूम होता है कि बायीं ओर यह बहुत दूर तक चला गया है। बोलियाँ बोली जा रही हैं और एक-एक चीज नीलाम हो रही है।]

यवनिका

कर देते हैं। (कुछ रुककर उस्तादजी से) उस्तादजी, यह सब आप ही के कहने का तो नतीजा है। आज तक आप ने जो कुछ सिखाया है उस पर अमल करने का जब मौका आया तब ठीक वक्त पर क्या आप अपनी तालीम को बदलना चाहते हैं ?

उस्ताद जी : मगर, अज़ीज़न······

अज़ीज़न : (अत्यन्त दृढ़ता से) बस और कुछ नहीं, एक लफ़्ज नहीं। (जाते हुए मुन्शीजी से) डुग्गी फ़ौरन पिटे, फ़ौरन, मुन्शीजी (तेज़ी से जाती है।)

[उस्तादजी और मुन्शीजी एक दूसरे की तरफ़ देखते हैं।]

लघु यवनिका

साथ, चाहे वह कैसे भी क्यों न हों, कोई ज़्यादती न करेगी।

[उस्तादजी का प्रवेश।]

उस्तादजी : सौदे हो गये, अज़ीज़न।

अज़ीज़न : कितने के सौदे किये, उस्तादजी ?

उस्तादजी : (बैठते हुए) पाँच लाख से कुछ ऊपर के। आज शाम तक सारा सामान आ जायगा और आज ही रुपया भी चुकाना होगा।

[अज़ीज़न विचार-मग्न हो जाती है। उस्तादजी और मुन्शीजी दोनों अज़ीज़न की तरफ देखते हैं। कुछ देर निस्तब्धता।]

अज़ीज़न : (मुन्शीजी से) देखिए, मुन्शीजी, फ़ौरन एक काम करना होगा।

मुन्शीजी : हुक्म दीजिए।

अज़ीज़न : तमाम शहर में अभी डुग्गी पिटवाइए कि आज दोपहर को मेरे मकान, असबाब और ज़ेवरात का नीलाम है।

उस्तादजी : (अत्यन्त आश्चर्य से) अज़ीज़न,······अज़ीज़न, यह क्या··· यह क्या······

अज़ीज़न : (उठते हुए दृढ़ता से) कोई कुछ बोलिए नहीं, जो कहती जाऊँ, चुपचाप करते जाइए।

उस्तादजी : लेकिन······लेकिन······

अज़ीज़न : यह वक्त अगर मगर लेकिन का नहीं है, यह वक्त है मुल्क की आज़ादी की लड़ाई का।······ऐसा वक़्त बार-बार नहीं आता; हरेक की जिन्दगी में नहीं आता।··· वह······वह खुशकिस्मत हैं जिनकी ज़िन्दगी में ऐसा वक्त आता है और जो ऐसे वक्त अपना सब-कुछ निसार

का अहलकार सेठ साहब के यहाँ आपके जाने का सारा हाल कहने को ही पहुँचा होगा।

मुन्शीजी : हाँ, यही मालूम होता है।

अजीजन : अच्छा, आगे ?

मुन्शीजी : बस, एक ही जगह रह गयी, महन्त लक्ष्मीगिर का मठ।

अजीजन : हाँ, वहाँ क्या हुआ, यह और बता दीजिए।

मुन्शीजी : वहाँ तो और भी बड़ा तमाशा हुआ।

अजीजन : अच्छा !

मुन्शीजी : जी हाँ। मुझे देखते ही महन्तजी घबड़ा से गये और जब मैंने कहा कि मुझे आपने भेजा है तब चिल्लाकर बोले सीताराम, सीताराम, राधेश्याम, राधेश्याम, शीव, शीव, हरी, हरी। मुझे उस······(**कुछ रुककर**) क्या कहूँ कहा नहीं जाता।

अजीजन : नहीं नहीं, पूरा-पूरा हाल बताइए, मुन्शीजी। यह तो सबके इम्तहान का वक्त है, और वह भी मुल्क के सामने।

मुन्शीजी : बोले, मुझे उस खानगी रांड से क्या सरोकार ?

अजीजन : (**लम्बी साँस लेकर**) ऐसा !

[**कुछ देर निस्तब्धता।**]

अजीजन : तो······तो यह······यह है इज़्ज़त आबरू वालों का हाल ! जिन्हें न मुल्क का कोई ख़याल है और न अपने वादे और ज़बान का। (**कुछ रुककर**) इनको तो एक लम्हें में दुरुस्त किया जा सकता है, लेकिन हमारी आज़ादी की फ़ौज का जो यह अहद है कि वह मुल्क के लोगों के

मुन्शीजी : उन्होंने कहा कि मौजूदा सरकार के ख़िलाफ़ वह किसी तरह की मदद नहीं दे सकते।

अज़ीज़न : ऐसा ?……अच्छा फिर ?

मुन्शीजी : उसके बाद मैं नवाब जंगबहादुर ख़ाँ के महल को गया।

अज़ीज़न : उन्होंने क्या कहा ?

मुन्शीजी : वह बोले कि उनके पास जो कुछ था, वह सब वक्त-वक्त पर आपको दे चुके हैं, उनके पास देने को अब कुछ भी नहीं है।

अज़ीज़न : ऐसा ? शायद मुझे सबसे कम इसी शख़्स से मिला है। ख़ैर।

मुन्शीजी : इसके बाद मैं सेठ दानमल की कोठी पर पहुँचा।

अज़ीज़न : अच्छा।

मुन्शीजी : वहाँ तो एक तमाशा ही हो गया।

अज़ीज़न : कैसा ?

मुन्शीजी : सेठ साहब दूकान पर ही तशरीफ़ रखते थे। उनके पास राजा रिपुदमनसिंह का अहलकार बैठा हुआ था। मुझे देखते ही उस अहलकार को छोड़ कर सेठ साहब इस फ़ुर्ती से घर के अन्दर घुसे जैसे बिल्ली को देखकर चूहा बिल में घुस जाता है। जब तक उनसे अपने आने का मक़सद कहलाऊँ तब तक उन्हीं का एक आदमी पहुँच गया और बोला कि मैं फ़ौरन उनकी कोठी छोड़कर चला जाऊँ, क्योंकि राजद्रोहियों को उनके यहाँ बैठने भी नहीं दिया जा सकता।

अज़ीज़न : ऐसी बात ! (कुछ रुककर) शायद राजा रिपुदमनसिंह

उस्तादजी : लेकिन तुम कितना ख़र्च कर चुकी हो, अज़ीज़न ?

अज़ीज़न : (**और भी लापरवाही से**) आप इसकी क्यों परवाह करते हैं ? काम कितना बड़ा है, उस तरफ़ नज़र रखिए। फिर मेरे पास अभी न जाने कितना है। और मेरे मेहरवानों के वादे……

[**मुन्शीजी का प्रवेश। यह अधेड़ अवस्था का एक गुण्डा-सा मालूम होता है।**]

अज़ीज़न : अच्छा, सौदागरों को मेरे पास लाने की ज़रूरत नहीं। आप उनसे सब तय कीजिए। मुन्शीजी को मैंने अपने चार-पाँच मेहरवानों के पास भेजा था, वह लौट आये हैं, मैं इनसे बात कर लेती हूँ।

उस्तादजी : (**जाते हुए**) अच्छी बात है। (**जाता है।**)

अज़ीज़न : (**गद्दी पर बैठते हुए**) अच्छा, बैठ जाइए, मुन्शीजी, और बतलाइए कि कहाँ से कितना लाये ?

मुन्शीजी : (**कालीन पर बैठते हुए**) कहीं से कुछ नहीं मिला, बाईजी।

अज़ीज़न : (**अत्यन्त अचरज से**) कहीं से कुछ नहीं मिला ! क्या कह रहे हैं आप ?

मुन्शीजी : जी हाँ, कहीं से कुछ नहीं मिला।

अज़ीज़न : (**उसी प्रकार अचरज से**) यह कैसे ?……यह कैसे ? आप कहाँ-कहाँ गये थे, कुछ हाल बताइए तो ?

मुन्शीजी : सबसे पहले मैं राजा रिपुदमनसिंह जी के राजभवन को गया।

अज़ीज़न : अच्छा।

मुन्शीजी : मुख़्तसर में ही सब बताता हूँ।

अज़ीज़न : हाँ, हाँ बहुत मुख़्तसर में।

दिलों में। वह……वह कभी सोच भी न सकते थे कि अज़ीज़न उनसे ऐसे, हाँ, ऐसे काम के लिए मदद चाहेगी। (**कुछ रुककर**) एक तरफ़ अगर सामानों के ढेर लग जायेंगे तो दूसरी तरफ़ सिक्कों के। (**फिर कुछ रुककर**) अज़ीज़न……अज़ीज़न, तू बदकिस्मत,……बदकिस्मत नहीं। (**घूमते हुए फिर गाने लगती है।**)

गीत

यहाँ कुछ न हक़ है, यहाँ कुछ न बातिल,
हक़ीक़त को बस जलवागर देखना है।
यह है अपना मक़सद, यह है अपनी मंज़िल,
हमें राह को राह पर देखना है।
जला उनका खिरमन, लुटा आशियाना,
कहाँ अब बसायेंगे घर, देखना है।
ख़बरदार ऐ, होश वालो! ख़बरदार,
तुम्हें राह एक पुर-ख़तर देखना है।

[**उस्तादजी का प्रवेश।**]

अज़ीज़न : (**उस्तादजी के आने की आहट पाकर, गाना बन्द कर, उस ओर बढ़ते हुए**) कहिए, क्या हुआ सौदों का ?

उस्तादजी : कुछ सौदागरों को यहीं ले आया हूँ। हर चीज़ के इतने दर बढ़ा दिये हैं, जिसका ठिकाना नहीं। इस वक्त भी कमबख्त रोज़गार करना चाहते हैं, फ़ायदा उठाना चाहते हैं।

अज़ीज़न : (**बेपरवाही से**) लेकिन क्या मुज़ायका है ? जिस चीज की ज़रूरत हो और जो जिस दर से मिले ख़रीद लीजिए।

उलीच रही हूँ, बहा रही हूँ; और......और जितना ज़्यादा देती हूँ, जितनी तेज रफ़्तार से उलीचती हूँ, उतनी ही ज़्यादा देने की, उतनी ही तेज़ रफ़्तार से बहाने की तबीयत होती है। (**कुछ रुककर खड़े हो सामने की तरफ देखते हुए**) पर......पर सुनती तो यह थी कि यह कमाने के वक्त होता है......इन्सान जितना ज्यादा कमाता है उतना ही ज़्यादा कमाने का लालच बढ़ता जाता है। (**फिर घूमते हुए**) यहाँ......यहाँ तो उल्टी बात हो रही है; जितना ख़र्च कर रही हूँ उतना ही ज़्यादा खर्च करने का लालच बढ़ रहा है। (**फिर शीशे के सामने खड़े होकर**) लेकिन......लेकिन, अज़ीज़न, मेरा ख़ज़ाना आख़िर कारूँ का ख़ज़ाना थोड़े ही है? ख़त्म होने को आ रहा है वह।......आज......आज क्या अभी-अभी जो अनाज, घी, तेल, कपड़े वगैरह के सौदे होने वाले हैं, उनमें नक़द......नक़द तो सारा का सारा ख़त्म हो जायगा;......पर क्या मुज़ायका है? मुल्क की आज़ादी की लड़ाई है। कब......कब किस-किस ख़ुशकिस्मत को ऐसा मौका मिलता है?......उन राजा, नवाबों, सेठ, साहूकारों से इस काम के लिए अभी तक एक पैसा नहीं लिया;......किसी काम के लिए कभी मदद चाहूँगी तो देना पड़ेगा, यह भर कहा है और......और सबने कितने जोश के साथ मदद देने के वादे किये हैं। किस...... किस काम में मदद की ज़रूरत है, यह उन्हें आज मुन्शी जी ने बताया होगा और......और काम का नाम सुनते ही कितना......कितना जोश बढ़ गया होगा उनके

तो आने वाला वक्त आ ही जाता है, क्यों ?......उस्ताद जी का बताया हुआ वक्त आ ही गया......आज़ादी की प्यासी हिन्दू-मुसलमान फ़ौजें आगे बढ़ती हुई कानपुर भी पहुँच ही गयीं !......और......और कितनी ख़ुशी हो रही है मुझे इन फ़ौजों का सारा इन्तजाम करने में (कछ रुककर) कभी......कभी तुझे इतनी ख़ुशी हुई थी ? (फिर कुछ रुककर) जब-जब, हाँ, जब-जब किसी तरह की कोई ख़ुशी होती थी, कुछ मिलने पर, कोई अच्छी चीज़ पाने पर, तब-तब......हाँ, तब-तब उसी के पीछे लगा हुआ ग़म......एक छटपटा देने वाला सदमा भी होता था;......ज्यों ही याद आता था उस चीज़ के हासिल होने का सबब, त्योंही वह ग़म......वह सदमा उस ख़ुशी को दबोच लेता था;......उफ़ ! (घूमते हुए) लेकिन......लेकिन बरसों में पैदा की हुई यह दौलत दिनों में ख़र्च करने में जो ख़ुशी......बिना ग़म...... बिना किसी सदमे के जो ख़ालिस ख़ुशी......एकदम जो ख़ालिस ख़ुशी हो रही है, वह......वह कभी न हुई थी। (कुछ रुककर फिर शीशे के सामने खड़ी हो) तो......तो सच्ची ख़ुशी लेने......हाँ, लेने में न होकर देने में होती है; क्यों ? (फिर कुछ रुककर) पर......पर उस वक्त जो पाती थी, उसके लिए भी तो कुछ न कुछ देना पड़ता था; वह......वह तो मिलने वाली चीज़ से कहीं बड़ी चीज़ होती थी।......उस वक्त तो लेने और देने दोनों में ही ग़म था, पर आज......आज ? (फिर घूमते हुए) दे रही हूँ, दोनों हाथों से दे रही हूँ, अरे दे क्या रही हूँ,

पहला दृश्य

स्थान : अज़ीज़न के मकान का बैठकखाना

समय : सन् १८५७ का प्रातःकाल

[दृश्य वही है जो उपक्रम में था, लेकिन दिन होने के कारण झाड़ों में मोमबत्तियाँ नहीं जल रही हैं। उपक्रम में चाँदी की चौकियों पर सोने का जो सामान सजा हुआ था वह भी नहीं है। अज़ीज़न इधर-उधर घूमती हुई गा रही है। आज वह पेशवाज़ नहीं पहने है। रेशमी साड़ी और सलूका पहने हुए है। उसके अंगों में भारी जड़ाऊ जेवर भी न होकर मोतियों का हलका गहना है।]

गीत

बरसो आँसू सहज सलोने !
ओ, मेरी आँखों के तारे,
बरसो खुलकर बरसो प्यारे,
ओ, अनमोल जिगर के टुकड़ो,
निकलो दुख के तार पिरोने।
बरसो आँसू सहज सलोने !
अपना सब कुछ छोड़ चुकी हूँ,
सबसे नाता तोड़ चुकी हूँ,
मैं अपनी भूली राहों पर,
निकली खुद ही दिया सँजोने।
बरसो आँसू सहज सलोने !

अज़ीज़न : (गीत पूरा होने पर एक शीशे के सामने खड़े होकर) तो······

नयी रागिनी, नये तराने,
नये, सुरीले गीत रे !
गाती रहूँ जिन्दगी भर मैं,
मधुर प्रेम-संगीत रे !

यवनिका

देकर मुझ में जो हिम्मत भर रहे हैं......क्या......क्या कहूँ मैं ? (आँखों में आँसू भर आते हैं।)

[तबलची और सारंगी बजाने वाले तबला और सारंगियाँ लेकर आते हैं। तबला और सारंगियाँ कालीन पर रखकर सब अज़ीज़न को मुबारक-बादियाँ देकर एक-एक अशरफ़ी नज़र करते हैं। तबला और सारंगियों का मिलाया जाना आरम्भ होता है। अब तो आने वालों का ताँता-सा लग जाता है। इन में राजा, नवाब, अपने-अपने मुसाहिबों के साथ, सेठ साहूकार और अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, एक महन्त भी हैं। कौन राजा, कौन नवाब, और कौन क्या है, यह अज़ीज़न के बार-बार खड़े हो होकर इनके स्वागत और सलाम कर उसके द्वारा किये गये सम्बोधन से मालूम होता है। सभी लोग बहुमूल्य जेवर, कपड़ों, आदि के बड़े-बड़े उपहार लाये हैं। सब लोग गद्दी पर बैठते हैं। सौगातें एक ओर रखी जाती हैं। सचमुच मनुष्यों और वस्तुओं की एक नुमाइश-सी हो जाती है। सब अज़ीज़न को जन्मगाँठ की बधाइयाँ देते हैं। अब अज़ीज़न का नाच और गाना शुरू होता है।]

गीत

नयी जवानी, नयी उमंगें,
नये नये सब काम रे !
नया सवेरा दम-दम दमके,
चम-चम चमके शाम रे !
सोने के दिन बने हमारे,
औ' चाँदी की रात रे !
मस्त जवानी मुझको देती,
खुशियों के सौगात रे !

हमारे अवध के बादशाह वाजिदअली शाह को तो इन बदज़ात अंग्रेजों ने कलकत्ते भेज दिया, लेकिन दिल्ली के शहंशाह बहादुरशाह हमारे साथ हो गये। किस मेहनत और तन्देही से नानासाहब और दूसरे कई शख्सों ने सारी तैयारी की है। दिल्ली की बादशाहत के झण्डे के नीचे एक दफ़ा फिर सारे हिन्दू और मुसलमान इत्तफ़ाक के साथ एक ही तारीख को आज़ादी की इस लड़ाई को शुरू करेंगे। अरे! इन मुट्ठी भर समुद्र पार से आये हुए लुटेरों का पता न लगेगा, पता! कितने लोग अपना सब कुछ निसार करने को तैयार हुए हैं। इन अंग्रेजों की हिन्दुस्तानी पलटन तक इनके साथ नहीं है। कौन इन शैतानों के साथ रह सकता है? (चारों तरफ देखकर) अज़ीज़न, तुम भी तो अपना सब कुछ इस काम के लिए निसार कर देना तय कर ही चुकी हो। अपने यहाँ आने वाले खास-खास मेहमानों से तुमने वादे भी ले लिये हैं कि जिस काम में तुम जो चाहोगी वह सब तुम्हें मदद में देंगे। लेकिन इस कटार से तुम खुद भी अगर मुल्क के किसी दुश्मन का काम तमाम कर सको······(चुप हो जाता है।)

अज़ीज़न : (प्रसन्नता से) उस्तादजी, आपने मुझे बचपन में खिलाया है। आपने मुझे तालीम दी है। आपने ही मुझे गन्दे से गन्दा पेशा करते हुए भी वक्त पर अपना फ़र्ज अदा करने के लिए तैयार किया है। और आज······और आज······आज आप मेरी सालगिरह पर यह सौगात

वहाँ शोख़ लहरें हैं, है चुलबुलाहट
चली जा रही हूँ किनारे-किनारे ।
यह सच है कि लुटती है दुनिया हमारी,
करूँ कैसे तुमसे शिकायत तुम्हारी,
हमारा तुम्हारा ख़ुदा ही है हाफ़िज,
नहीं बस की है यह हमारे, तुम्हारे !

[गीत पूरा होते-होते उस्ताद जी का प्रवेश ! उस्ताद जी की उम्र उनकी लम्बी सफेद दाढ़ी, बड़ी-बड़ी सफेद मूँछों और बालों के सफेद पट्टों के कारण करीब ६० वर्ष की मालूम होती है । उस्ताद जी गेहुँएँ रंग का ऊँचा-पूरा, मोटा-ताजा आदमी है । चपकन और पाजामा पहने हुए है । सिर पर साफ़ा है, पर कान के पास बालों के पट्टे दिखायी पड़ते हैं । उस्ताद जी के आने की आहट पाकर अजीजन उसकी तरफ देखती है और उस्तादजी को देखकर उसकी ओर बढ़ आदाब बजाती है ।]

उस्तादजी : (तसलीम करते हुए) मुबारक हो, मुबारक हो, यह पच्चासवीं सालगिरह ।

अजीजन : (मुस्कराकर) शुक्रिया के सिवा और क्या कहूँ, तशरीफ रखिए ।

[दोनों कालीन पर बैठ जाते हैं ।]

उस्तादजी : (चपकन के अन्दर से एक कटार निकाल कर) इस सालगिरह पर यह सौगात है । (कटार अजीजन को देता है ।)

अजीजन : (कटार लेकर उसे देखते हुए) अच्छा, इस सालगिरह पर तो आपने अजीब सौगात दी ।

उस्तादजी : मुल्क की इस वक्त की हालत देखते हुए शायद यही सौगात सबसे ज्यादा काम में आने वाली चीज़ होगी । अज़ीज़न, हम लोगों की तैयारी पूरी-पूरी हो चुकी है ।

हुए) यह सब कुछ उस्ताद जी के कहने के मुताबिक किसी ऐसे काम के काम आ जाय जिस काम को दुनिया इज़्ज़त की नज़र से देखती है; जिसे तवारीख़ इज़्ज़त का काम कहती है। (कुछ रुककर) और……और उस्ताद जी तो कहते थे……सुनती……सुनती है न, अज़ीज़न, शायद वह दिन दूर नहीं है जब ऐसा मौका आ जायगा। (फिर कुछ रुककर) इतना……इतना ही नहीं कि उस वक्त तू (चारों तरफ देखकर) इस सबको और (फिर उसी तरह अपने सिर से पैर तक उंगली घुमाकर) इस सबको उस काम में लगा सकेगी, लेकिन……लेकिन अपने तमाम मेहरबानों……नहीं……नहीं खरीदारों को भी उस काम के लिए काम में ले सकेगी। और उस दिन तू ……तू अपने को बदकिस्मत समझेगी व खुशकिस्मत? ……उस दिन……उस दिन क्या तू यह न समझेगी कि बुरे पेशे से हुई दौलत भी अच्छे काम में लगायी जा सकती है। (कुछ रुककर इधर-उधर घूमते हुए फिर गाने लगती है)

गीत

जफ़ाकारियाँ हैं; सितमगारियाँ हैं,
मज़ालिम की हर किस्म तैयारियाँ हैं।
वफ़ा की अदायें ग़ज़ब कर रही हैं
लुटे जाते हैं इश्क के चाँद तारे।
वहाँ मय है; मीना है; रंगीनियाँ हैं;
यहाँ अश्के बाराँ हैं; ग़मगीनियाँ हैं।

कपड़े का नहीं, सोने-चाँदी का नहीं, हीरे-मोती का नहीं, किसी बेजान चीज़ का नहीं, गाय, बैल, बकरी, घोड़े जानदार चीज़ों का नहीं—जब गुलाम और बाँदियाँ थीं, तब······तब इन्सान के जिस्मों की खरीद-बिक्री का ही रोज़गार होता था, पर······पर वह होता था दूसरे के जिस्मों का, अपने खुद के जिस्म का नहीं।······शायद ······शायद तवायफ़ के सिवा अपने खुद के जिस्म को रोज़गार की चीज़ किसी भी रोज़गारी को नहीं बनानी पड़ती और······और फिर इस रोज़गार में रोज़गारी चीज़ की खरीद तो होती ही नहीं, बिक्री······लगातार बिक्री ही जारी रहती है ! क्या-क्या करके खरीदारों को ललचाना पड़ता है······और सबसे बड़ी······सबसे तक-लीफ़ देह बात जो करनी पड़ती है, वह है—जिसके लिए दिल में सख्त से सख्त नफ़रत होती है, उसके लिए भी मुहब्बत······अज़हद मुहब्बत का दिखावा ! उफ़ ! कैसी बदकिस्मत हूँ मैं······कैसा······कैसा बुरा है यह पेशा ! (कुछ रुककर)······कितनी······कितनी कोशिश करती हूँ (फिर शीशे के सामने खड़े होकर) तुझे······देख कर यह सब भूलने की। (चारों तरफ देख कर) कितनी······ कितनी कोशिश करती हूँ, इस सब में खो जाने की। लेकिन····· लेकिन इन सब ख़यालात की दिल में ऐसी खिचड़ी पका करती है कि चैन ही मिलना दुश्वार है। (कुछ रुककर) चैन······हाँ, चैन तभी······तभी मिल सकता है जब (चारों तरफ देखकर) यह सब कुछ और ······और (उंगली को शीशे में अपने सिर से पैर तक घुमाते

से भाँपने की कोशिश किया करते हैं।……किस……
किस में इतनी ताक़त है, जितनी तुझ में ? जो……जो
काम बड़ी-बड़ी फ़ौजें नहीं कर सकतीं, वह…वह कर सकती
हैं तेरी आँखें ! **(कुछ रुककर)** पर……पर जिस……
जिस ड्योढ़ी पर इतने इज्ज़त-आबरू वाले चक्कर
काटा करते हैं, खाक छाना करते हैं, जहाँ का हुक्म
बजाने को सिर आँखों पर तैयार रहते हैं, उसे……उसे
दुनिया इज़्ज़त की नज़र से नहीं देखती, बल्कि नीची…
…कितनी नीची निगाह से देखी जाती है वह ?……
तवायफ़ का घर !……रंडी का कोठा ! इन इज़्ज़तदारों
की आबरू यहाँ आने से नहीं घटती और यहाँ की
आबरू इनके आने से नहीं बढ़ती। **(कुछ रुककर)** उफ़ !
**(उसका मुख एकदम उतर जाता है। फिर कुछ रुककर, अब
इधर-उधर टहलते हुए लम्बी साँस लेकर)** ज़ब यह याद
आता है, तब……तब भूल जाती हूँ इस सारी खूबसूरती
को, भूल जाती हूँ इस तमाम दौलत को, भूल जाती हूँ
सब शानौशौकत और ताक़त को।……और……और
जब याद आता है कि **(फिर शीशे के सामने खड़े होकर)**
चार दिनों की चाँदनी के बाद उम्र ढलते ही यह सब भी
ख़त्म हो जायगा, तब……तब तो दिल पर साँप-सा
लोट जाता है।……और……और आज……आज भी
तो **(उंगली को शीशे में अपने सिर से पैर तक घुमाते हुए)**
इसे……इसे बेच कर ही **(चारों तरफ दृष्टि घुमाकर)** यह
सब क़ायम रखा जा रहा है।……कैसा……कैसा
रोज़गार है यह ? **(फिर घूमते हुए)**……अनाज़ का नहीं,

और······और शायद हमेशा इसी······हाँ, इसी तरह उठा करेगा ।······किस······किस तवायफ़ के बाप का ठीक पता रहता है ? और जिस माँ का पता रहता है······वह भी तवायफ़······किसी फ़ख्र की चीज़ नहीं । (कुछ रुककर) लेकिन, लेकिन, अज़ीज़न, इस खूबसूरती (चारों तरफ़ देख कर फिर शीशे में देखते हुए) इस शानौ शौकत से ज्यादा फ़ख्र की दुनिया में और कोई चीज़ है भी ?······कानपुर और कानपुर ही क्या दूर-दूर तक, ऐ अज़ीज़न, कौन तेरी खूबसूरती, कौन तेरी नज़ाक़त, कौन तेरी दौलत, कौन तेरी शान, और कौन तेरी ताक़त का मुक़ाबला कर सकता है ?······राजाओं और नवाबों की ड्योढ़ी पर भी इतने लोग कदमबोसी के लिए हाज़िर न होते होंगे, जितने इस दरवाज़े पर आते हैं ।······अरे जिन राजाओं और नवाबों के यहाँ दूसरे सलाम बजाते हैं, वह राजा नवाब भी यहाँ चक्कर लगाते हैं······और······और राजा नवाब ही नहीं, दुनियाँ में जितने भी ओहदों की इज्ज़त आबरू है, वह तमाम—महन्त और गुसाईं, सेठ और साहूकार, हर तरह के दौलतमन्द और अहलकार ! आज······आज तेरी साल गिरह है । आज यहाँ हर तरह के लोगों की एक नुमायश-सी हो जायगी; और······और यह हज़रात तेरे लिए जो सौग़ातें लायँगे उनकी भी नुमायश ।······फिर······फिर यह सारे के सारे तेरी आँखों के इशारे पर जैसा तू चाहे वैसा नाच नाचने को तैयार, जो तू चाहे वह करने को तैयार ।······अरे, तू क्या चाहती है, यह······यह तेरी निगाहों

गीत

कोई मुझे सताये क्यों ?
कोई मुझे रुलाये क्यों ?
मैंने किसी का क्या किया,
कोई मुझे दुखाये क्यों ?
मेरी जवान जिन्दगी,
मेरी जवान हसरतें,
मेरे हसीन ख्वाब को,
ठोकर कोई लगाये क्यों ?
मेरी खुशी का बाग़ अब,
फूला फला गमक रहा,
उससे जले कोई, मगर,
कोई उसे जलाये क्यों ?

[गीत पूरा होते-होते अजीजन एक शीशे के सामने जाकर खड़ी हो जाती है। कुछ देर निस्तब्धता।]

अजीजन : (शीशे में अपने को देखते हुए अपने को ही सम्बोधन कर) तो……तो आज……आज तू चौबीस साल की होकर पच्चीसवें साल में कदम रख रही है। लेकिन…लेकिन दर-असल दुनिया में आयी थी करीब पच्चीस साल पहले। दस महीने माँ के पेट में रही और फिर इतने सालों से बाहर। (कुछ रुककर) किसकी मेहरबानी से माँ के पेट में आयी? ……पता नहीं, न इस सवाल का कोई जवाब मिला और……और न कभी मिल सकता। फिर……फिर भी हर वक्त यही सवाल दिल में उठा करता है,…… एक खास तरह की तड़प के साथ उठा करता है,……

उपक्रम

स्थान : अज़ीज़न के मकान का बैठकख़ाना

समय : रात

[बैठकख़ाना किसी भी राजा या नवाब के बैठकख़ाने से कम नहीं दिखता। दिवालों और छत पर सुन्दर चित्रकारी है और जगह-जगह पर बड़े-बड़े शीशे लगे हुए हैं। दरवाज़े यद्यपि उस ज़माने के दरवाज़ों के समान छोटे-छोटे हैं, लेकिन उनकी चौखटों और किवाड़ों पर खुदाव का काम होने के कारण बहुत खूबसूरत दिखायी पड़ते हैं। दरवाज़ों पर कमख़ाब के महराबदार परदे पड़े हुए हैं, जो दरवाज़ों के दोनों ओर कलाबत्तू की मोटी-मोटी डोरियों से बाँधे गये हैं। छत से काँच के झाड़ लटक रहे हैं, जिनके हर एक फ़ानूस में मोमबत्ती जल रही हैं। इन सैकड़ों मोमबत्तियों की वजह से कमरे में अच्छी रोशनी फैली हुई है। कमरे की ज़मीन पर मोटा रंगीन क़ालीन है और इस पर बहुत बड़ी गद्दी तथा गद्दी पर कई मसनद हैं। गद्दी और मसनद कमख़ाब के हैं। इन पर सफेद ढाके की पतली मलमल की चादर और खोलियाँ हैं, जिनसे इनके अन्दर का कमख़ाब चमक रहा है। गद्दी के सामने चाँदी की चौकियों पर सोने के पान-दान, गुलाब पाश, हुक्क़ा, पीकदान इत्यादि रखे हैं। कमरे में अकेली अज़ीज़न इधर-उधर घूमती हुई गा रही है। अज़ीज़न की उम्र २३, २४ वर्ष के करीब जान पड़ती हैं। वह गोरे रंग की कुछ ऊँची ढले हुए से शरीर की अत्यन्त सुन्दर स्त्री है। मूल्यवान कमख़ाब का पेशवाज़ पहने हुए है। उसके अंग प्रत्यंगों में बेशक़ीमती जड़ाऊ जेवर हैं। रोशनी के सबब से इन आभूषणों के नगीनों में से किरणें-सी निकल रही हैं।]

पात्र, स्थान, समय

मुख्य पात्र :

अज़ीज़न : एक गणिका

उस्तादजी : उसका गुरु

मुन्शी जी : उसका कारिन्दा

स्थान : कानपुर

समय : सन् १८५६, ५७, ५८ ईस्वी; उपक्रम सन् ५६, दृश्य सन् ५७ और उपसंहार सन् ५८

अज़ीज़न

संग्रामसिंह : मराठे शूद्र नहीं, सच्चे क्षत्रिय हैं, कँवरजी। आज वे जिस प्रकार क्षात्र-धर्म का पालन कर रहे हैं, अन्य कोई जाति नहीं। राजपूतों और मराठों का यह विवाह इन दो महान् जातियों के एकीकरण का आरम्भ होता। कदाचित् देश का, समूचे भारत का इतिहास पलट देता, किन्तु··· ···किन्तु, कँवरजी, राजपूतों की यह अदूरदर्शिता, यह संकीर्णता······आह······आह···(**कुछ रुककर**) कँवरजी कृष्णकुमारी सीधे स्वर्ग को गयी है, स्वर्ग से ऊँचा कोई लोक होगा तो उसको गयी है। उसकी सद्गति, उच्चतम गति में सन्देह नहीं। इस जमाने में बड़े-बड़े धर्माचार्य, बड़े-बड़े दार्शनिक जो नहीं कर सकते वह इस बालिका ने किया, परन्तु······परन्तु, कँवरजी, कृष्णकुमारी को जो बात उच्च से उच्च स्थान देने का कारण हुई वही राजपूत-जाति को निम्न से निम्न स्थल पर ले जायगी। कृष्णकुमारी के शव की भस्म के साथ राजपूत-जाति भी सदा के लिए भस्म हो जायगी।

[**दाहनी ओर से एक वृद्ध ब्राह्मण बायीं ओर आता है।**]

ब्राह्मण : (**ज्वानसिंह से**) कँवरजी, कपाल-क्रिया का समय हो गया।

[**ज्वानसिंह लम्बी साँस ले ब्राह्मण के साथ दाहनी ओर बढ़ता है।**]

यवनिका

उपसंहार

स्थान : राज-श्मशान

समय : संध्या

[**पीछे की ओर कई ऊँची-ऊँची छतरियाँ (समाधियाँ) दिखती हैं, जिनके सोने के कलश डूबते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों में चमक रहे हैं। बीच में चिता जल रही है। दाहनी ओर अनेक व्यक्ति जमीन पर बैठे हुए हैं। सबके सिर पर सफेद पोतिये (शोक के समय के सिर पर बँधे हुए वस्त्र) हैं। बायीं ओर ज्वानसिंह और संग्रामसिंह खड़े हैं। इन दोनों के सिर पर भी पोतिये हैं। संग्रामसिंह की अवस्था लगभग २५ वर्ष की है। वह कुछ साँवले रंग का, ऊँचा पूरा, दोहरे शरीर का युवक है। ऊपर चढ़ी हुई मूँछें हैं।**]

संग्रामसिंह : (**लम्बी साँस लेकर**) कँवरजी, यह चिता कृष्णाकुमारी की नहीं यथार्थ में राजपूत-जाति की है।

ज्वानसिंह : (**संग्रामसिंह की ओर देखते हुए**) राजपूत-जाति की ?

संग्रामसिंह : हाँ, राजपूत-जाति की, कँवरजी। (**चिता की ओर देखते हुए**) जो अग्नि कृष्णाकुमारी के विवाह की वेदी में प्रतिष्ठित होनी चाहिए थी, वह अग्नि आज कृष्णाकुमारी के मृत शरीर को ही नहीं जला रही है, राजपूत-जाति को भस्म कर रही है। (**कुछ रुककर**) और जानते हो कृष्णाकुमारी का विवाह किससे होना चाहिए था ?

ज्वानसिंह : (**संग्रामसिंह की ओर देखते हुए**) किससे, संग्रामसिंह जी ?

संग्रामसिंह : श्रीमन्त सींधिया से।

ज्वानसिंह : (**आश्चर्य से**) श्रीमन्त सींधिया से ! शिशोदिया कुल की राजकुमारी का विवाह शूद्र से ?

······हाँ, माँ, गिरिधर······गिरिधर गोपाल में लीन हो रही हैं।

[कृष्णकुमारी एकटक सामने की ओर देखती है; पटरानी कृष्णकुमारी की ओर। उसकी आँखों से चौधारे आँसू बहते हैं। भीमसिंह का अजीतसिंह के साथ प्रवेश। भीमसिंह के मुख पर महान् शोक छाया हुआ है। भीमसिंह शीघ्रता से कृष्णकुमारी की ओर बढ़ता है।]

भीमसिंह : (जल्दी से कृष्णकुमारी के पास बैठते हुए) बेटी······बेटी····

[कृष्णकुमारी की दृष्टि भीमसिंह की ओर घूमती है। उसके ओंठों पर मुस्कराहट आ जाती है, पर उसी समय उसके नेत्र बन्द हो जाते हैं। भीमसिंह और पटरानी उच्च स्वर से रो पड़ते हैं।]

यवनिका

कार्य किया है। यह न सोचना कि उन्हें मुझसे प्रेम नहीं था। संसार में कदाचित् मुझसे अधिक वे किसी को नहीं चाहते। पर राज······राजधर्म में दीक्षित होने के कारण व्यष्टि की ओर न देख समष्टि की ओर देखना, और अपनी निकट से निकटतम वस्तु का भी अपने धर्म के लिए बलिदान दे देना, उनका कर्त्तव्य ही है। और फिर उन्होंने मुझे······मुझे कैसी महान् मृत्यु दी है। **(अजीतसिंह से)** ठाकुराँ, दरबार को ला सकोगे ? वे इस दृश्य को नहीं देखना चाहते इसीलिए यहाँ नहीं हैं, यह मैं जानती हूँ, परन्तु अन्तिम समय में उनके दर्शन करना चाहती हूँ। मेरे पैर शून्य हो गये हैं, शून्यता बढ़ रही है।

[अजीतसिंह का चुपचाप प्रस्थान। पटरानी के आँसू बहने लगते हैं।]

कृष्णकुमारी : **(सामने की ओर देखते हुए)** माँ······माँ······देखो······ देखो······सामने······सामने मुझे दधीचि······दधीचि ऋषि के दर्शन हो रहे हैं। **(कुछ रुककर)** और······और देखो······देखो वह······वह······राजपूतनियों के जौहर ······जौहर दिख रहे हैं। आह !······कैसे······कैसे सुख······कैसे······कैसे हर्ष······ कैसे······कैसे······ उत्साह······कैसे······कैसे······साहस······से ये वीर-बालाएँ अग्नि में कूद-कूद कर उसकी ज्वालाओं, उसकी लपटों के साथ स्वर्ग को जा रही हैं। **(कुछ रुककर)** और ······और······देखो······देखो, माँ······करो······करो दर्शन मीरा······मीरा देवी के। वे······वे······किस ······किस शान्ति······किस अखंड शान्ति, किस अपूर्व शान्ति से विष का मनवार प्याला पी गिरिधर गोपाल

……माता अम्बा की कृपा से तेरा शरीर रहने वाला ही है। तेरा बाल……बाल तक बाँका नहीं हो सकता।

[अजीतसिंह का प्रवेश।]

कृष्णकुमारी : (**प्याले को देखते हुए**) राजस्थान में, मेवाड़ में, शुभ और अशुभ, जन्म और मृत्यु सबको तू रंग देता है, कसूँबा! जैसा गहरा तेरा रंग है वैसा ही गहरा तेरे विष का असर। मुझे विश्वास है तू……तू मेरी प्रार्थना सुनेगा ……अवश्यमेव सुनेगा। तू मुझे धोखा न देगा। कभी नहीं।

[**इस प्याले को भी कृष्णकुमारी खाली कर कालीन पर रखती है।**]

कृष्णकुमारी : माँ, मनुष्य को केवल एक बात सोचना चाहिए कि वह ठीक कार्य कर रहा है या नहीं; जीवन-मृत्यु की परवाह किये बिना, सुख-दुःख की चिन्ता किये बिना, अरे अवस्था तक की ओर न देखकर उसे केवल इस बात को अपना ध्रुव तारा बना सब कुछ करना चाहिए। ऋषि-महर्षियों ने, ब्रह्म और राजर्षियों ने कभी जीवन-मृत्यु की ओर दृष्टि नहीं डाली। दधीचि ने अपनी अस्थियाँ दे दीं और न जाने किस-किस ने क्या-क्या? राजपूतनियों ने तो प्राणों को सदा हथेली पर ही रखा है……एक दो ने, दस बीस ने, सौ दो सौ ने नहीं, हजारों ने। (**अजीतसिंह की ओर देखकर**) हाँ, ठाकुराँ, इस बार तुम सफल हुए।

[**पटरानी की सारी प्रसन्नता हवा हो जाती है। वह झपटकर कृष्णकुमारी को गोद में लिटा लेती है। अजीतसिंह निकट बैठ जाता है।**]

कृष्णकुमारी : माँ, धैर्य रखना……भाईजी……भाईजी को सँभालना। उन्होंने बुरा……बुरा नहीं उत्तम……उत्तम से उत्तम

[कृष्णकुमारी इस प्याले को भी खाली कर कालीन पर रख देती है।]

कृष्णकुमारी : माँ, यह निश्चयपूर्वक न जानने पर भी कि मृत्यु के बाद क्या होता है, एक निश्चित बात से मुख मोड़ लेना तो निर्बुद्धिता का द्योतक है। मृत्यु के पश्चात् क्या होगा यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं जानती, पर यह जानती हूँ कि मेरी मृत्यु से मेवाड़ पर आये हुए सारे संकट दूर हो जायेंगे। तब मैं ऐसी निर्बुद्धि तो नहीं कि अनिश्चितता के भय से निश्चितता से मुख मोड़ लूँ। फिर एक न एक दिन मृत्यु आयगी यह भी निश्चय है और जीवन चला तो उसमें सुख पाऊँगी या दुःख यह अनिश्चित। ऐसी दशा में अनिश्चित सुख के लिए एक न एक दिन आने वाली निश्चित मृत्यु को, जब वह एक उत्तम अवसर देखकर आयी है, तब क्यों छोड़ दूँ ? आगे तो कदाचित् वह ऐसे समय आवे जब उसमें कोई विशेषता ही न रहे। आज मेरी मृत्यु की विशेषता यह है कि उससे सबके संकटों का निवारण होता है। माँ, ऐसी मृत्यु......ऐसी महान् मृत्यु......किस-किस के भाग्य में बदी होती है ? (कुछ रुककर अजीतसिंह से) अरें कैसा......कैसा विष है तुम्हारा, ठाकुराँ ? (प्याला देते हुए)......कसूँवा...... कसूँवा का तेज़......तेज़ से तेज़ विष लाओ। मैं अब इस शरीर को क्षण......क्षण भर भी नहीं रखना चाहती।

[अजीतसिंह का चुपचाप प्याला लेकर प्रस्थान।]

पटरानी : (प्रसन्नता से) परन्तु......परन्तु......बाई, माता अम्बा

अमर है। अमर आत्मा का प्रेम चाहिए नित्य के साथ और उस प्रेम के पश्चात् तो यह आवागमन उन यात्राओं के सदृश है जो पल-पल पर परिवर्तित हो नया आनन्द देती हैं। हाँ, नित नये जन्म के वाद इस अनित्य का संपर्क भी होता है, पर वह तो यात्रा के साथियों के सदृश माना जाना चाहिए। (कुछ रुककर, खड़े हुए अजीतसिंह से) ठाकुराँ, कैसा तुम्हारा विष है ?

अजीतसिंह : (आश्चर्य से) क्या कोई असर नहीं हुआ, राजकुमारी ?

कृष्णकुमारी : थोड़ा भी तो नहीं, ठाकुराँ।

पटरानी : (उत्साह से) कभी नहीं होगा, कभी नहीं, तेरे शरीर में अम्बा माता ने प्रवेश किया है, वाई। तू साक्षात् दुर्गा हो गयी है। इन का पुरुषों के घृणित षड्यन्त्रों, इन कायरों की कुत्सित······

कृष्णकुमारी : (बीच ही में अजीतसिंह को प्याला देते हुए) और······और लाओ, ठाकुराँ; तेज······खूब तेज लाओ।

[अजीतसिंह का प्याला ले नीचे मुख किये हुए प्रस्थान।]

पटरानी : (और उत्सुकता से) चाहे कितना······कितना ही विष तू पिये, वेटी, तुझ पर विष का कोई असर न होगा। तुझ पर शस्त्र भी प्रहार न कर सकेंगे। तुझे अग्नि भी न जला सकेगी।

[अजीतसिंह का भरे हुए प्याले के साथ प्रवेश। कृष्णकुमारी उसे ले उसकी ओर देखती है।]

कृष्णकुमारी : तीसरी बार भी धोखा न देना। क्या······क्या मृत्यु भी मेरे लिए इतनी······इतनी मँहगी हो गयी ? क्या मृत्यु की गोद में भा······

सुन रहा था) क्यों, राजकुमारीजी, पैरों में कुछ भारीपन मालूम होता है ?

कृष्णकुमारी : (पैर भूमि पर ठोंकते हुए) नहीं, ठाकुराँ, मुझे तो कुछ नहीं जान पड़ता।

अजीतसिंह : और कोई बात मालूम होती है ?

कृष्णकुमारी : (कुछ देर सोचकर) नहीं मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम होता।

अजीतसिंह : (आश्चर्य से) ऐसा !

कृष्णकुमारी : (प्याला उठाकर) एक प्याला और दो, ठाकुराँ। (प्याला अजीतसिंह को देती है।)

अजीतसिंह : (प्याला लेते हुए) ऐं······ऐसा······ऐसा······(प्रस्थान।)

पटरानी : (दुःख से) दुष्ट !

कृष्णकुमारी : माँ, तुम निरर्थक ही दुःखी हो रही हो।

[भरे हुए प्याले के साथ अजीतसिंह का प्रवेश। कृष्णकुमारी उसके हाथ से प्याला ले उसे भी एक साँस में खाली कर कालीन पर रख देती है।]

कृष्णकुमारी : माँ, जो मृत्यु से डरते हैं, वे अनित्य वस्तुओं के प्रेमी हैं—जैसे अच्छा भोजन, उत्तम वस्त्राभूषण, आलीशान महल, हरे-भरे बाग-बगीचे। ये सब एक न एक दिन छूटने वाले ही हैं, फिर इनमें आसक्ति से लाभ ? और अनित्य की आसक्ति तो धीरे-धीरे गुलामी में परिणत हो जाती है, जो क्षण-क्षण पर मृत्यु का आलिंगन है। हर क्षण अनित्य के छूटने का भय, मृत्यु का सा भय है। आत्मा या तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाती है, और तब उसके नाश का शोक ही निरर्थक है, क्योंकि शरीर का नाश तो अवश्यंभावी है, और या आत्मा

मृत्यु के बाद कोई वस्तु कष्टप्रद होगी, इसका ही भय रह सकता। मृत्यु या तो सदा के लिए आराम से सो जाना है या किसी अन्य लोक को जाना है और या इसी लोक को पुनः लौटकर आ जाना है। पहली बात अच्छे और बुरे दोनों के लिए समान रूप से अच्छी है। विना स्वप्नों की रात किसे नहीं अच्छी लगती ? और दूसरी दो बातों से अच्छी बातें अच्छे व्यक्ति के लिए तो हो नहीं सकतीं, क्योंकि अच्छा व्यक्ति या तो इस लोक से किसी अच्छे लोक को जायगा अथवा इस लोक में और अच्छी योनि पायगा। यात्रा मुझे कितनी प्रिय है, यह तुम जानती हो।......माँ, (खिड़की से बाहर देखते हुए) उन अरावली पहाड़ियों की यात्राएँ, भगवान् एकलिंग के मन्दिर और जय-समुन्द के घाटों की यात्राएँ ही मुझे कितना सुख देती थीं ? फिर इस यात्रा में तो मुझे न जाने क्या-क्या देखने को मिलेगा। किसी अच्छे लोक में पहुँचने के पश्चात् कैसा अच्छा संग पाऊँगी वहाँ। इस लोक में तो अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के व्यक्ति हैं। उस लोक में तो सत्कर्म करने वाले ही पहुँचते होंगे, वहाँ तो सभी अच्छे होंगे, माँ। और यदि इसी लोक में नयी योनि मिली तो वह भी एक सत्कर्म करने के कारण इससे तो अच्छी......कहीं अच्छी होगी। एक तो परिवर्तन ही सुखद है और फिर अच्छा परिवर्तन तो कहीं अधिक सुखद।

अजीतसिंह : (जो खड़े-खड़े ही कृष्णकुमारी की ओर देख, उसका यह भाषण

का आकाश के सदृश नीला, शून्य, किन्तु महान् बना दिया। हे मृत्यु के प्रतीक ! पहुँचा दो मुझे अपने प्रभु की गोद में जो सुखद और शान्त है। हे मृत्यु के सोपान ! गरल होने पर भी तुम कैसे तरल दिखते हो, थोड़े से कंप से भी कैसी छोटी-छोटी उर्मियाँ उठती हैं, तुममें। वही हाल तुम्हारे प्रभु की गोद का भी होगा। मृत्यु से अधिक सदय और शान्त कौन है, जो हीन, दीन, दुखी और दुर्बल का त्राता है ? उससे अधिक सदय और शान्त कौन हो सकता है ? पहुँचा, पहुँचा दो मुझे उसी की गोद में। शान्ति दे दो मुझको, और शान्त कर दो मेरे कुल, मेरी जाति, मेरे समाज, मेरे देश की इस अशान्ति को।

[कृष्णकुमारी एक साँस में प्याला खाली कर कालीन पर रख देती है।]

कृष्णकुमारी : माँ, यह तो मैं नहीं जानती कि मृत्यु अच्छी चीज है या बुरी, पर मुझे इसमें सन्देह नहीं, कि मैं एक महान् कार्य सम्पन्न करने के लिए उसका आलिंगन कर रही हूँ। फिर यदि यह नहीं कहा जा सकता कि मृत्यु अच्छी चीज है या बुरी तो उसे बुरा मान लेना भी अनुचित है; साथ ही उससे भयभीत होना तो कायरता है।

पटरानी : (रोते-रोते) बेटी······बाई, बाई······तू क्या······क्या ······(हिचकियाँ बँध जाती हैं।)

कृष्णकुमारी : माँ, तुम तो मुझसे······मुझसे भी छोटी बन रही हो ? मृत्यु के लिए इतनी कातरता, इतना शोक, इतना भय ? माँ, जिसने कभी कोई बुरा काम नहीं किया, वह न जीवन में किसी काम से भयभीत हो सकता और न उसे

करना ही पड़ता है। कुल, जाति, समाज, और देश के लिए इस समय आपको बलिदान करना और हमें उसमें सहायता देनी ही होगी।

कृष्णकुमारी : मैं सब समझती हूँ, ठाकुराँ, आप शीघ्र ही प्याला लावें। मैं जानती हूँ कि कर्त्तव्य कैसा ही क्यों न हो, पूर्ण होने पर वह संतोष का ही कारण होता है।

[अजीतसिंह धीरे-धीरे उठकर जाता है। पटरानी रो पड़ती है।]

कृष्णकुमारी : माँ, माँ, कितना……कितना समझाऊँ तुम्हें। तुम्हारा स्नेह तो मोह में परिणत हो गया है। (**जब पटरानी के आँसू नहीं रुकते तब अपनी ओढ़नी के छोर से आँसू पोछते हुए**) क्यों, माँ, मृत्यु को मुझे सुख और उत्साह के साथ आलिंगन न करने दोगी ?

[**कुछ देर निस्तब्धता। अजीतसिंह का स्वर्ण के रत्न-जटित प्याले में विष लिये हुए प्रवेश।**]

पटरानी : (**अजीतसिंह को देखकर, रोते-रोते भर्राए हुए स्वर में**) अजित ……अजित……

कृष्णकुमारी : (**जल्दी से प्याला लेकर**) बस शान्ति,……शान्ति, माँ !

पटरानी : (**और जोर से रोते हुए**) बाई……बाई……तू मृत्यु के साथ खेल रही है !

कृष्णकुमारी : जो जीवन के साथ खेलता है उसे अवसर पड़ने पर मृत्यु के साथ खेलने को भी तैयार रहना चाहिए, माँ। (**प्याले और उसमें भरे हुए विष को देखते हुए**) प्रिय प्याले, कितने……कितने सुन्दर हो तुम और कितना-कितना शान्त है तुम में भरा हुआ यह विष ! (**भरे हुए विष को सम्बोधन कर**) हे हलाहल ! तुमने महादेव के महाकंठ

प्रश्न उठ गया है आत्महत्या के पाप का। (**कटार उठाकर**) आप इसे मेरी छाती में भोंक दीजिए।

अजीतसिंह : आपकी वीरता को धन्य है, राजकुमारीजी, और वीर-कर्म के कारण महान् पुण्य प्राप्त कर आप उच्चतम लोक को जायँगी। परन्तु जब मैंने सारा वृत्त सुना तब आप की इस यात्रा के लिए इस क्रूर कटार की जगह दूसरा मृदु मार्ग सोचा है। परिस्थिति के कारण आपको यह लोक छोड़ना ही होगा, पर न आत्महत्या की आवश्यकता है और न अन्य किसी को इस कटार के उपयोग की।

कृष्णकुमारी : तब ?

अजीतसिंह : राजकुमारीजी, मैं भी भावुक व्यक्ति हूँ, परन्तु परिस्थिति के अनुसार क्रूर से क्रूर कर्त्तव्य करने के लिए मैं अपने को किसी प्रकार तैयार कर लेता हूँ।

कृष्णकुमारी : क्यों नहीं, आप राजपूत हैं, सच्चे क्षत्रिय हैं।

अजीतसिंह : मैंने आपके विष-पान की व्यवस्था की है, राजकुमारी।

कृष्णकुमारी : (**प्रसन्नता से**) ठीक, इससे अच्छा उपाय सोचा नहीं जा सकता था। आप शीघ्र मनवार-प्याला लायें, ठाकुराँ। मैं इस समय की स्थिति का शीघ्र से शीघ्र अन्त कर देना चाहती हूँ।

अजीतसिंह : (**लम्बी साँस लेकर**) राजकुमारीजी, इस कठोर, इस क्रूरतम कार्य करने के लिए मैंने अपने हृदय को, अपने मस्तिष्क को, किस प्रकार तैयार किया है, यह मैं आप को और पटरानीजी को शब्दों में नहीं बता सकता पर······पर कर्त्तव्य······क्रूर से क्रूर कर्त्तव्य भी पालन

पटरानी : (**आश्चर्य से**) मैं मृत्यु से डरती हूँ ?

कृष्णकुमारी : और नहीं तो यह क्या है ?

पटरानी : मैं मृत्यु से नहीं डरती, बाई, राजपूतनी के लिए मृत्यु भय की वस्तु नहीं, परन्तु मैं या तो वीरोचित मृत्यु चाहती हूँ, या स्वाभाविक मृत्यु। यदि पुरुष केसरिया बाना पहन युद्ध के लिए निकलें और युद्ध-भूमि में अपना बलिदान कर दें, तो मैं जौहर कर मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हूँ। जिस दिन काल आ जाय उस दिन भी मैं मृत्यु के हाथ अपने को सौंपने को प्रस्तुत हूँ, परन्तु······परन्तु तेरी मृत्यु के लिए जैसी रचना रची गयी है, उसे देखते हुए, यह न वीरोचित मृत्यु है और न स्वाभाविक।

कृष्णकुमारी : यह इन दोनों प्रकार की मृत्युओं से महान् मृत्यु है, यह है समष्टि के लाभ के लिए व्यष्टि की मृत्यु। यह······ यह······

[**अजीतसिंह का प्रवेश।**]

पटरानी : (**अजीतसिंह की ओर देखकर**) ओह अजित ! (**कुछ रुक कर**) कहो, अजित, अब तुम कौन सा संवाद लाये हो ?

अजीतसिंह : (**कालीन पर बैठते हुए**) मैं······मैं, पटरानीजी ?

पटरानी : हाँ, क्यों यों ही मेवाड़ में छारंडी का दिन नये संवादों का दिन होता है, और (**लंबी साँस लेकर**) इस साल छारंडी का दिन तो······(**गला भर आने के कारण चुप हो जाती है।**)

कृष्णकुमारी : (**पटरानी से**) नहीं, माँ, अजित संवाद लेकर नहीं, संवाद ले जाने के लिए आये हैं। (**अजीतसिंह से**) ठाकुराँ, आपको कृष्णा न मिलकर कृष्णा की लाश ही मिलती, परन्तु

कृष्णकुमारी : परन्तु, माँ, मैं नहीं मानती कि मेरा स्वयं अपने हाथ से निधन आत्म-हत्या है, यह है आत्म-बलिदान। समष्टि के लिए व्यष्टि का आत्म-समर्पण। जौहर और सती होना यदि बलिदान हैं, हत्या नहीं, तो यह भी वही है, चाहे पद्धति में भिन्नता हो। किसी प्रकार के आवेश में आकर, या दुःख से बचने के लिए, मैं अपना निधन नहीं कर रही हूँ, मैं यह कर रही हूँ कुल, जाति, समाज और देश की रक्षा के लिए। फिर यह पाप कैसे हो सकता है, यह हत्या क्योंकर हो सकती है? यह पुण्य है पुण्य, यह बलिदान है, महान् बलिदान।

पटरानी : मैं यह नहीं मानती, बाई, मैं तुझसे सहमत नहीं। (**कुछ रुककर**) यदि मरना......मरना ही है तो जा, कह अपने पिता से, वे किसी जल्लाद को बुला देंगे, आत्महत्या के पाप से बच जायगी।

कृष्णकुमारी : माँ, तुम भाईजी को वृथा दोष लगा रही हो, सारी परिस्थिति को जान लेने के पश्चात् भी तुम्हारा......

पटरानी : (**बीच ही में**) जान ली......जान ली सारी परिस्थिति। अपने बचाव के लिए का पुरुषों का यह घृणित आयोजन, कायर बाप का बेटी की हत्या का यह षड्यंत्र......

कृष्णकुमारी : षड्यन्त्र क्यों, माँ, जब भाईजी स्वयं स्वीकार कर गये कि ज्वान को उन्होंने भेजा था, तब यह षड्यन्त्र कहाँ रह गया? और पुरुषों के बचाव का प्रश्न ही कहाँ है? यह है एक व्यष्टि के बलिदान से समष्टि के बचाव का सवाल, जिसमें पुरुष, स्त्रियाँ, बालक, सभी हैं। माँ, तुम क्षत्राणी हो, राजपूतनी हो, तुम मृत्यु से क्यों डरती हो?

चौथा दृश्य

स्थान : कृष्णकुमारी का महल

समय : मध्याह्न

[कृष्णकुमारी गद्दी पर बैठी हुई अपने सामने रखी हुई कटार की ओर देख रही है। पटरानी उसी के निकट बैठी कृष्णकुमारी की ओर देख रही है। कृष्णकुमारी की दृष्टि में एक प्रकार की शून्यता और पटरानी की मुद्रा में अत्यधिक उद्विग्नता है।]

कृष्णकुमारी : (कुछ देर बाद, एकाएक सिर उठाकर, पटरानी की ओर देखते हुए) तो माँ,······ऐसे······ऐसे महान् कार्य के लिए आत्म-बलिदान करने पर भी मुझे आत्महत्या का पाप लगेगा ?

पटरानी : आत्महत्या, आत्महत्या ही है, बाई, चाहे वह किसी काम के लिए भी क्यों न की जाय ।

कृष्णकुमारी : और जौहर में जो आत्महत्याएँ की जाती हैं ?

पटरानी : (कुछ विचारते हुए) वे······वे आत्महत्या नहीं। जौहर स्त्रियों की स्वीकृत रण-भूमि है ।

कृष्णकुमारी : और पति के साथ चिता में सती होना ?

पटरानी : वह······वह भी धर्म द्वारा स्वीकृत मृत्यु है। वह (कटार की ओर देखकर) इस······इस कटार ······कटार से ······ (चुप हो जाती है।)

[कुछ देर निस्तब्धता। कृष्णकुमारी फिर उसी प्रकार की दृष्टि से कटार की ओर और पटरानी वैसी ही मुद्रा से कृष्णकुमारी की तरफ देखने लगती है।]

तो महान् तो वही है, जिसका बलिदान होना है, या जो बलिदान करता है। (भीमसिंह से) आपने ज्वान को इस प्रकार निरर्थक भेजा, मुझे बुला लेते। मैं अबला नहीं सबला राजपूतनी हूँ। आपका रक्त, राजसिंह और परताप का रक्त, साँगा और कुंभा का रक्त, हम्मीर और बप्पा रावल का रक्त, मेरी नाड़ियों में भी बह रहा है। देश के लिए, प्रजा के लिए, मैं इन प्राणों के बलिदान का साहस रखती हूँ। अपने धर्म की रक्षा के लिए मैं शरीर को तुच्छ से तुच्छ वस्तु मानती हूँ। आप मुझे बुला लेते। आपके आज्ञा पाते ही तत्क्षण मैं मृत्यु का आलिंगन करती। तैयार हूँ, भाईजी, तैयार हूँ मैं, धर्म के लिए, देश के लिए, कुल के लिए, आपके लिए इन प्राणों को उत्सर्ग करने को।

भीमसिंह : (आँसू बहाते, उसी प्रकार के भर्राए हुए स्वर से, लिपटी हुई कृष्णकुमारी की पीठ पर हाथ फेरते हुए) बेटी……बेटी…

पटरानी : आह ! आह !

[पटरानी मूर्च्छित होकर गिरती है। भीमसिंह और कृष्णकुमारी दोनों दौड़कर उसे संभालते हैं।]

लघु यवनिका

पोसी, विवाह योग्य की हुई कन्या के वध का ऐसा षड्यन्त्र……

कृष्णकुमारी : (बीच ही में) भाईजी……ऐसी……ऐसी बातें मुख से न निकालिए! आपने कोई षड्यन्त्र नहीं किया। मेरी हत्या का नहीं, मेरे बलिदान, और बलिदान ही नहीं, कल्याण का यह आयोजन है, और उचित आयोजन, भाईजी। आप मेरा विवाह किसी एक ही व्यक्ति से तो कर सकते थे। उसकी प्रसन्नता न जाने कितनों की अप्रसन्नता का कारण होती। एक मेरे कारण मेवाड़ पर कदाचित् अभूतपूर्व आपत्ति आती। इस परिस्थिति में आपने जो निर्णय किया है, उससे अच्छा निर्णय संभव ही न था। ……आप देश की रक्षा, प्रजा की रक्षा के यज्ञ में अपनी सबसे प्रिय वस्तु का बलिदान कर रहे हैं, हत्या नहीं। अधम नहीं, आप महान् हैं, पिताजी।

पटरानी : (क्रोध से) बेटी……बेटी, यह बलिदान नहीं, हत्या, सीधी सादी, घृणित और कुत्सित हत्या है, अपनी पुत्री की ऐसी हत्या!

कृष्णकुमारी : (फिर बीच ही में) माँ, तुम नहीं समझ रही हो, नहीं समझ रही हो। यह पुत्री की हत्या नहीं, यह है समष्टि के लिए व्यष्टि का बलिदान।

पटरानी : यह है पुरुषों का अपने बचाव के लिए स्त्री का संहार। महान् कहे जाने वाले पुरुषों का अपने जीवन के लिए अपनी जीवित संपत्ति का……

कृष्णकुमारी : (फिर बीच ही में) मैंने कहा था, फिर कहती हूँ, यहाँ पुरुष और स्त्री का प्रश्न ही नहीं है, और यदि हो भी

मैं यह सोच ही नहीं सकती—ऐसी अधम……ऐसी निकृष्ट बात, ऐसी……ऐसी कुत्सित कल्पना—मेरे हृदय में नहीं उठ सकती। (कुछ रुककर) क्या……क्या ज्वानसिंह इस कटार से तेरी हत्या करने के लिए तेरे पास आया था ?

कृष्णकुमारी : सो……सो तो मैं नहीं कह सकती, माँ, किन्तु…… किन्तु……

[भीमसिंह का प्रवेश। भीमसिंह इस समय न जामा पहने हैं, न मंदील बाँधे है। लम्बा अंगरखा, धोती और केसरी रंग की पगड़ी धारण किये है। उसका मुख एक दम उतरा हुआ है।]

भीमसिंह : (आगे बढ़ते हुए, भर्राये हुए स्वर में) ज्वान मेरी……मेरी अनुमति से हत्यारा बन कर आया था……मेरे……मेरे कहने से उस कटार को लाया था। अधम पिता—हत्यारे पिता ने अपनी पुत्री का रक्त चूसने उसे रावल में… …छारंडी के दिन……एक त्योहार के दिवस भेजा था ……आह !

[पटरानी और कृष्णकुमारी दोनों भीमसिंह का शब्द सुनते ही खड़ी हो गयी थीं। कृष्णकुमारी दौड़कर भीमसिंह के गले से लिपट जाती है। पटरानी एकटक दोनों की ओर देखती है। उसकी दृष्टि में क्रोध से युक्त महान् शोक दिखायी पड़ता है। भीमसिंह के नेत्रों से आँसू बहते हैं। वह अपने हाथ कृष्णकुमारी की पीठ पर फेरता है।]

कृष्णकुमारी : भाईजी……भाईजी……आप……आप अपने को अधम, अपने को हत्यारा यह सब क्या……क्या कह रहे हैं ?

भीमसिंह : (और भी भर्राए हुए स्वर में) और क्या कहूँ, बेटी ? शिशोदिया कुल के किस कुल-कलंक ने अपनी पाली

के सदृश अपनी मालकियत रखने का प्रयत्न किया है, उन्हें अपनी क्रीड़ा के लिए खिलौना माना है। स्त्री अपनी इस परिस्थति में परिवर्तन करेगी। यदि उसे पुरुष ने सब बातों में समान अधिकार नहीं दिया तो वह विप्लव करेगी और फिर तो वह स्वयं पुरुष का स्थान प्राप्त कर उन्हें अपनी जगह देगी।

कृष्णकुमारी : किन्तु, माँ, इस समय मेवाड़ पर जो आपत्ति आयी है, उसमें पुरुष और स्त्री का प्रश्न नहीं है, वह तो दोनों ही वर्गों पर समान रूप से आयी है।

पटरानी : पर उसमें पुरुष वर्ग एक स्त्री की हत्या करके बचना जो चाहता है। समान रूप से आयी हुई आपत्ति का हम समान रूप से सामना करने के लिए तैयार हैं। पुरुष केसरिया बाना पहन कर युद्ध को निकलें। हमें उन्होंने युद्ध करना सिखाया होता, तो हम भी उनके साथ निकलतीं। हम उसमें असमर्थ हैं, पर मरने में नहीं। उनकी हार पर हम जीवित न रहेंगी। मेवाड़ में कभी ऐसा हुआ भी नहीं। जब उनके रण-भूमि में बलिदान का समय उपस्थित होगा तब हम रावल में जौहर करेंगी। जितने साहस, जितने उत्साह, जितनी उमंग, जितने आनन्द से वे अपने सिरों की आहुति रण-चंडी की वेदी में चढ़ाएँगे, उससे भी अधिक साहस, उससे भी अधिक उत्साह, उससे भी अधिक उमंग, उससे भी अधिक आनन्द से हम अपने सारे शरीरों का उस प्रबल अग्नि में हवन कर देंगी, किन्तु······किन्तु, बेटी, तेरी······तेरी इस प्रकार की हत्या······ठंडी हत्या मुझे स्वीकार नहीं।······बाई,

बाल्यावस्था मे मेवाड़ की वीर-बालाओं के इतिहास पढ़े हैं। उनकी कथाओं को पढ़-पढ़ कर मेरा हृदय न जाने कितनी बार बीनों और हाथों उछला है। मेरे सारे शरीर की रोमावली शल्यों और बाणों के सदृश सीधी और तीखी खड़ी हुई है। मुझे····· मुझे भी क्या जीवन में वैसे बलिदान का अवसर मिलेगा—यह सोच-सोच कर न जाने कितनी······कितनी बार मेरे मस्तिष्क में विचारों की चक्कियाँ चली हैं। (गद्‌गद् स्वर में) माँ ··
···माँ, मुझे······मुझे जीवन का वह अपूर्व अवसर मिल गया। तुम्हारी कोख मैं पवित्र कर सकूँगी। जन्मभूमि के गौरव की मुझसे वृद्धि होगी और एक······एक मेरे रक्त बह जाने पर मेवाड़ के अगणित निवासियों की रक्षा हो जायगी। यह······यह बलिदान तो ·····

पटरानी : क्या······क्या कहती है, बेटी, यह····· यह बलिदान नहीं, हत्या······घृणित हत्या है; और पुरुष वर्ग की स्त्री की हत्या करके अपने बचाव की कुत्सित चेष्टा !

कृष्णकुमारी : पर······पर, माँ, स्त्री तो मिटने के लिए ही बनी है, चाहे वह हत्या से मिटायी जाय या स्वयं अपना बलिदान करे।

पटरानी : किन्तु, बेटी, स्त्रियों की ऐसी हत्या, उनके ऐसे बलिदान पर मेरा विश्वास नहीं। मैं नहीं मानती कि स्त्री मिटने के लिए ही बनी है। इस संसार में जितना अधिकार पुरुष को जीवित रहने का है, उतना ही स्त्री को। जितने आनन्द भोगने का पुरुष अधिकारी है, उतनी ही स्त्री। अब तक पुरुषों ने स्त्रियों पर राज्य, धन, संपत्ति

और मेवाड़ अकेला दूसरी ओर से संग्राम करेगा। बप्पा रावल और साँगा, परताप और राजसिंह की सन्तति, मेवाड़ के सोलहों क्षत्रिय घरानों के सरदार और उनके अनुयायियों को, भीलों को साथ ले, इन शत्रुओं से संग्राम करने का अवसर प्राप्त होगा। फिर से चारण जन समुदाय को जगावेंगे। शंख तथा भेरी बजेंगे। जन समुदाय उठ-उठ कर योद्धाओं के रूप में मेवाड़ के लाल झंडे के नीचे एकत्रित हो, युद्ध कर, अपना और अपने शत्रुओं का रक्त बहा, उस रक्त की रण-चण्डी की वेदी में आहुति डालेंगे। जीत हुई तो हम नारियाँ इन वीरों का अपूर्व स्वागत करेंगी और हार हुई तो जौहर कर सीधे, हाँ, सीधे स्वर्ग को जायेंगी। (**कुछ रुककर**) पर······पर, ······बाई, इस······इस सबसे ज्वानसिंह के तेरे पास आने और······और······(**कटार की ओर देखते हुए**) इस ······ इस कटार से क्या सम्बन्ध है?

कृष्णकुमारी : यह, माँ, कि यह ···· यह सारा रक्तपात······रक्तपात बच जावे। एक······एक मेरी ही आहुति दे, रण-चण्डी की अग्नि को मेरे रक्त से शान्त कर दिया जाय।

पटरानी : (**चिल्लाकर**) तेरी····· तेरी हत्या की जाय?

कृष्णकुमारी : हत्या नहीं, माँ, बलिदान; और······और उचित······ बलिदान। हमारे प्राचीन शास्त्रों तक का मत है कि एक के बलिदान से यदि कुल की रक्षा होती हो तो उसका बलिदान ही उचित बात है। यहाँ तो मेरे बलिदान से केवल कुल की ही नहीं, सारी प्रजा और देश की रक्षा होती है। (**कुछ रुककर**) माँ····· माँ······मैंने

पर स्त्री के विवाह के सम्बन्ध में पुरुष प्रायः क्यों लड़ते हैं ?

पटरानी : इसलिए कि वे स्त्री को जीवित नहीं एक निर्जीव पदार्थ मानते हैं। वे समझते हैं जिस प्रकार राज्य, धन, सम्पत्ति इत्यादि पर मिलकियत प्राप्त करने का उन्हें नैसर्गिक अधिकार है, उसी प्रकार स्त्री पर भी।

कृष्णकुमारी : (गंभीरता से) ऐसा······ऐसा, माँ ? (चुप हो जाती है।)

पटरानी : पर यह तो बता इस सबसे ज्वान के तेरे पास आने और कटार से क्या सम्बन्ध है ?

कृष्णकुमारी : माँ, मेरे पाणि-ग्रहण की माँग अब केवल जयपुर और जोधपुर में ही केन्द्रित नहीं है, वह और आगे बढ़ी है।

पटरानी : (आश्चर्य से) अच्छा !

कृष्णकुमारी : श्रीमन्त सींधियाजी मुझसे विवाह करना चाहते हैं।

पटरानी : ऐसा ?

कृष्णकुमारी : हाँ, उन्होंने भाईजी से कहा है कि या तो वे उनसे मेरा विवाह कर दें, या मेवाड़ पर केवल जोधपुर का ही नहीं मराठों तथा अंग्रेजों का भी आक्रमण होगा।

पटरानी : और दरबार ने क्या कहा ?

कृष्णकुमारी : दरबार शूद्र से मेरे विवाह की कल्पना तक नहीं कर सकते।

[पटरानी का सिर झुक जाता है। वह कुछ देर कुछ नहीं बोलती। कृष्णकुमारी एकटक उसकी ओर देखती है।]

पटरानी : (एकाएक सिर उठा कर) ऐसा ? तो फिर······फिर एक बार मेवाड़ में रण-चण्डी जागेगी।······एक बार······ एक बार फिर सारे भारत की शक्तियाँ एक ओर से

कृष्णकुमारी : प्रायः सभी आयी थीं, माँ।

पटरानी : (कृष्णकुमारी का मुख ध्यान से देखते हुए) और किस प्रकार नहायी है तू ? रंग गुलाल तक अच्छी तरह मुख से नहीं छूटे।

कृष्णकुमारी : ज्वान आ गये थे, माँ, इसलिए जल्दी-जल्दी नहायी।

पटरानी : अच्छा, इतने तड़के ? वह कहीं होली खेलने नहीं गया ?

कृष्णकुमारी : उन्हें मुझसे कुछ आवश्यक कार्य था, माँ ?

पटरानी : (कुछ आश्चर्य से) उसे तुझसे आवश्यक कार्य था ?

कृष्णकुमारी : हाँ, माँ, (कटार की ओर संकेत कर) देखती नहीं हो यह कटार ?

पटरानी : (कटार को देखकर) यह कटार तू क्यों लगा कर आयी है ?

कृष्णकुमारी : यह मेरी कटार नहीं है, माँ।

पटरानी : तब ?

कृष्णकुमारी : यह ज्वान की कटार है।

पटरानी : (आश्चर्य से) ज्वान को तुझसे आवश्यक कार्य था, यह ज्वान की कटार है, और इसे तू लगाकर आयी है मेरी समझ में कुछ नहीं आया।

कृष्णकुमारी : (लम्बी साँस लेकर) बैठ जाओ, माँ, तो सब हाल कहूँ; लम्बी, बड़ी लम्बी कहानी है।

[दोनों गद्दी पर बैठ जाती हैं। कुछ देर निस्तब्धता। पटरानी एकटक कृष्णकुमारी की ओर देखती है और कृष्णकुमारी कुछ देर सोचती है।]

कृष्णकुमारी : क्यों, माँ, पुरुष के चाहे जितने विवाह हों पर स्त्री का तो एक ही विवाह हो सकता है न ?

पटरानी : इसमें भी कोई सन्देह है ?

कृष्णकुमारी : और पुरुष के विवाह के सम्बन्ध में स्त्रियाँ चाहे न लड़ें

तीसरा दृश्य

स्थान : रावल में पटरानी का महल

समय : प्रातःकाल

[महल का एक कमरा है, प्रायः वैसा ही जैसा कृष्णकुमारी का था, किन्तु दीवालों और छत का रंग उस कमरे से भिन्न है। इन पर गुलाबी तैल का रंग है और उस पर रंग-बिरंगे बेल-बूटे। कालीन भी गुलाबी जमीन का है और उस पर विविध रंग की बेलें और बूटे हैं। कृष्णकुमारी का प्रवेश। उसकी वेश-भूषा दूसरे दृश्य के सदृश है; इतना ही अन्तर है कि कमर में ज्वानसिंह की कटार खुसी हुई है।]

कृष्णकुमारी : (जोर से) माँ! माँ!

नेपथ्य से : आयी, बाई।

[पटरानी का प्रवेश। उसकी अवस्था लगभग चालीस वर्ष की है। वह गौरवर्ण की ऊँची-पूरी और भरे हुए शरीर की सुन्दर स्त्री है। बैंगनी रंग का घाघरा, लाल रंग की काँचली और वसंती रंग की ओढ़नी धारण किये है। सब कपड़ों पर गोटा लगा हुआ है। रत्न-जटित आभूषणों से उसके अंग प्रत्यंग जगमगा रहे हैं।

पटरानी : (निकट आ) खेल हो गया, बेटी?

कृष्णकुमारी : हाँ, माँ, अभी स्नान करके ही आ रही हूँ।

पटरानी : आज जल्दी हो गया खेल?

कृष्णकुमारी : बहुत जल्दी तो नहीं, माँ।

पटरानी : सब भाई बेटों के यहाँ से बाइयाँ और बींदनियाँ, तेरी सब सहेलियाँ, आयी थीं?

ज्वानसिंह : (जल्दी भर्राये हुए स्वर में) हाँ······हाँ······ नहीं······नहीं ······ वह······ वह तो······(चुप हो जाता है।)

कृष्णकुमारी : (कटार उठाकर) भाया, यह कटार तुम छिपाकर किस लिए लाये थे ?

[ज्वानसिंह उठकर इधर-उधर टहलता है, पर बोलता कुछ नहीं।]

कृष्णकुमारी : (ज्वानसिंह के सामने जाकर खड़े हो) भाया !

[ज्वानसिंह रो पड़ता है। कुछ देर निस्तब्धता। एकाएक ज्वानसिंह का प्रस्थान।]

कृष्णकुमारी : (ज्वानसिंह के पीछे जाते हुए) भाया ! भाया !

[ज्वानसिंह नहीं लौटता। कृष्णकुमारी एकटक कटार की ओर देखती है।]

लघु यवनिका

राजा जगत की ही तुम्हारी माँग नहीं है, एक नयी महान् समस्या और उपस्थित हो गयी है।

कृष्णकुमारी : कैसी ?

ज्वानसिंह : सींधिया ने तुमसे विवाह करने का प्रस्ताव किया है।

कृष्णकुमारी : ऐसा ?

ज्वानसिंह : हाँ, उसने दरबार के सामने रखा है कि या तो वे राठौरों मराठों और अंग्रेजों, सबसे युद्ध करें, या तुम्हारा विवाह उससे करें।

कृष्णकुमारी : और दरबार ने क्या कहा ?

ज्वानसिंह : एक शूद्र के साथ दरबार तुम्हारे विवाह की कल्पना तक नहीं कर सकते।

कृष्णकुमारी : (कुछ रुककर) फिर क्या····· क्या उपाय सोचा है, भाया, पिताजी युद्ध करेंगे।

ज्वानसिंह : (सहमे हुए स्वर में) युद्ध ! युद्ध, भैन ? मेवाड़ एक ओर राठौरों और कछवाहों, दूसरी ओर मराठों, तीसरी ओर अंग्रेजों और चौथी ओर मुसलमानों, सबसे युद्ध करने में समर्थ नहीं है।

कृष्णकुमारी : तो सबने मेवाड़ के विरोध में बीड़ा उठाया है ?

ज्वानसिंह : हाँ, आज मेवाड़ सर्वथा अकेला है।

कृष्णकुमारी : फिर ?

ज्वानसिंह : (भर्राये हुए स्वर में) क्या······क्या कहूँ, भैन।

[कुछ देर निस्तब्धता रहती है। एकाएक ज्वानसिंह के अँगरखे के नीचे से कटार पृथ्वी पर गिर पड़ती है।]

कृष्णकुमारी : (कटार देखकर) हैं ! यह कटार तुमने कमरबन्द में न बाँध कर अँगरखे के नीचे रखी थी ?

वीर-गाथाएँ पहले-पहल तुम्हीं ने मुझे सुनाना आरम्भ किया था। फिर······फिर तो वे मेरे भजन······हाँ, भजन की सामग्री हो गयीं। जिन वीर माताओं, जिन वीर पत्नियों, जिन वीर पुत्रियों ने अपने कुल, अपनी जाति, अपने देश, अपने धर्म के लिए सहर्ष उत्साह और उमंग से कष्ट सहन किये हैं, अपने प्यारे प्राण दिये हैं, वन-वन भटकी हैं, और अग्नि की तप्त ज्वालाओं को भी शीतल हिम के सदृश आलिंगन किया है, उनके जीवन, उनके जीवनों के दृश्य मेरे सामने घूमते रहते हैं। अनेक बार मैं उनके स्वप्न देखती हूँ। उनके प्रति पूज्य······परम पूज्य भावनाएँ रहते हुए भी मेरे हृदय में उनके प्रति अनेक बार डाह-सी उत्पन्न होती है। मेरे मन में उठता है—मुझे······मुझे भी कभी ऐसा अवसर प्राप्त हो सकता है जब मैं अपने जीवन को अपने कुल, अपनी जाति, अपने धर्म, अपने देश के लिए उत्सर्ग कर सकूँ। (कुछ रुककर) भाया, यदि मैं आपत्ति का कारण हूँ, मेरे किसी भी प्रकार के त्याग, अरे शरीर तक के अर्पण से यदि वह आपत्ति दूर हो सकती हो तो कहो······कहो, भाया, वह······वह संवाद तो मेरे लिए दुःख नहीं, हर्ष का, खेद नहीं, उल्लास का विषय होगा।

ज्वानसिंह : (गद्गद् स्वर में) धन्य······धन्य है, भैन, धन्य तुम्हें। तुम सच्ची वीर बाला हो, तुम सच्ची क्षत्राणी हो, सच्ची राजपूतनी। (कुछ रुककर) भैन, तुम्हारे विवाह के झगड़े ने ही उग्र रूप धारण किया है। महाराजा मान और

का सौन्दर्य देख उल्लास उठता है। प्रेमी की दृष्टि में यदि वर्षा-ऋतु का मद रहता है, तो भाई की दृष्टि में शरद की स्वच्छता। भैन, तुम मेरी ही नहीं, रावल की ही नहीं, सारे राज-कुल की, सारे राजप्रासाद की स्फूर्ति हो, स्नेह-प्रतिमा हो। (कुछ रुककर) क्या……क्या कहूँ तुमसे, इस आपत्ति का कारण तुम्हें सुनाने का मेरा साहस नहीं होता। (सिर झुका लेता है।)

कृष्णकुमारी : (एकटक ज्वानसिंह की ओर देखते हुए) क्यों, क्या मैं अबला हूँ, इसलिए? पर तुम्हें समझना चाहिए कि राजपूतनियाँ अबला नहीं सबला हुआ करती हैं।

ज्वानसिंह : (सिर उठाकर) नहीं नहीं……इसलिए……इसलिए नहीं, भैन, पर……पर……(फिर सिर झुका लेता है।)

कृष्णकुमारी : (सोचते हुए) तब……तब क्या इसलिए कि आपत्ति का मैं कारण हूँ, भाया?

[ज्वानसिंह सिर उठाकर कृष्णकुमारी की ओर केवल देखता है, पर कुछ बोलता नहीं।]

कृष्णकुमारी : (ज्वानसिंह की ओर देखते हुए, कुछ देर बाद) समझी, मैं ही आपत्ति का कारण हूँ। (कुछ रुककर) मेरे विवाह के सम्बन्ध में जो झगड़ा उठा हुआ है, उसने कोई उग्र रूप धारण किया होगा?

[ज्वानसिंह चुपचाप कृष्णकुमारी की ओर देखता रहता है, कुछ बोलता नहीं। कृष्णकुमारी सिर झुका कर कुछ सोचने लगती है। कुछ देर निस्तब्धता।]

कृष्णकुमारी : (एकाएक जोश भरे स्वर में सिर उठाकर) भाया, मैं क्षत्राणी हूँ, सुना, सच्ची राजपूतनी। क्षत्राणियों की

को आ रहा है। मेरा चित्त भी अत्यन्त अस्थिर हो उठा है।

ज्वानसिंह : (**कुछ सँभलकर, लम्बी साँस ले**) भैन, आपत्तियों को पुरुष ही सहन कर लें तो अच्छा है; स्त्रियों तक वे बातें न पहुँचने देना ही पुरुषों का कर्त्तव्य होना चाहिए।

कृष्णकुमारी : व्यर्थ की बातें न करो, भाया, जीवन-रथ के स्त्री और पुरुष दोनों चक्र हैं; मेवाड़ ने तो सदा यही माना है। जब-जब देश पर आपत्ति आयी है उसके निवारण का, उसके लिए बलिदान का, दोनों ने समान रूप से प्रयत्न किया है।

[**ज्वानसिंह कोई उत्तर न देकर, सिर झुका, विचारमग्न-सा हो जाता है। कृष्णकुमारी एकटक उसकी ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।**]

कृष्णकुमारी : (**एकाएक**) भाया, तुम्हें सौगन्ध है मेरी, यदि तुम सब बातें स्पष्ट रूप से मुझे न बताओगे।

ज्वानसिंह : (**धीरे-धीरे सिर उठा कर, लम्बी साँस ले**) भैन, तुम सौगन्ध दिला रही हो, क्या कहूँ? तुम्हारे दिन हैं—खेलने, हँसने के। जीवन के यथार्थ आरम्भ के समय, जीवन के वसंत के बीच, जीवन की समाप्ति का संवाद, जीवन के पतझड़ का संवाद, सुनने की अपेक्षा सुनाना कदाचित् कहीं कठिन कार्य है। भैन, मैंने तुम्हें पालने में अपने अंगों को हिलाते, रोते और मुस्कराते देखा है। तुम्हें गोद में खिलाया है और तुम्हारे साथ खेला भी हूँ। तुम्हें पढ़ाया और तुम्हारे साथ पढ़ा भी हूँ। प्रेमी के हृदय में प्रेमिका के सौन्दर्य को देख यदि उमंगें उठती हैं, तो भाई को भैन

ज्वानसिंह : क्या……क्या करोगी तुम उसे सुनकर, भैन ?

कृष्णकुमारी : क्यों, क्या मैं मेवाड़ की नहीं हूँ ?……इसी धरती से मेरा शरीर नहीं बना है ? इसी के वायु-मंडल में नहीं पला है ?

ज्वानसिंह : यह तो ठीक है, भैन, परन्तु……परन्तु……

कृष्णकुमारी : किन्तु परन्तु कुछ नहीं, भाया। मुझे भी मेवाड़ की आपत्ति जानने का अधिकार है।

ज्वानसिंह : (उठकर इधर-उधर टहलते हुए) अधिकार……अधिकार ……तो……अधिकार तो……(चुप हो जाता है।)

कृष्णकुमारी : (उठकर, ज्वानसिंह का हाथ पकड़, उसे बैठा, उसकी ओर ध्यानपूर्वक देखते हुए) भाया, तुम्हारी तो विचित्र…… विचित्र दशा है। आज पर्यन्त मैंने तुम्हें कभी भी ऐसी हालत में नहीं देखा।

ज्वानसिंह : (गला साफ कर बगलें झाँकते हुए) ऐसा……ऐसा……

कृष्णकुमारी : है क्या, भाया ? मुझे होली खेलते में से बुलाया, कहलाया—आवश्यक काम है। जब आयी और काम पूछा तब पहले बोले—"हाँ आवश्यक कार्य ही है।" फिर उसी साँस में बोल उठे—"ऐसा……ऐसा आवश्यक तो नहीं।" चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही हैं, स्वर भर्रा रहा है। कारण पूछा तो बोले—"मेवाड़ पर जो आपत्ति आ रही है कदाचित् उसी का प्रभाव होगा"। आपत्ति पूछती हूँ तो बताते नहीं। निरर्थक शब्दों को दुहराते हो— "किन्तु-किन्तु" "परन्तु……परन्तु" "ऐसा……ऐसा" है क्या, भाया, है क्या ? अब तो मेरा कलेजा भी मुँह

ज्वानसिंह : (गद्दी के एक कोने पर बैठते हुए, गला साफ कर, उसी प्रकार के स्वर में) आवश्यक……हाँ, आवश्यक कार्य ही है, (कुछ रुककर) नहीं, नहीं……ऐसा……ऐसा आवश्यक तो नहीं……पर……पर……(चुप हो जाता है।)

कृष्णकुमारी : (ध्यानपूर्वक ज्वानसिंह की ओर देखते हुए) आज किस प्रकार बोल रहे हो, भाया ?

ज्वानसिंह : (उसी तरह) किस……किस प्रकार बोल रहा हूँ ? ठीक……ठीक नहीं बोल रहा हूँ, भैन ?

कृष्णकुमारी : (और भी ध्यानपूर्वक ज्वानसिंह की ओर देखते हुए, कुछ आश्चर्य से) ठीक ? ठीक क्या, मैंने इस तरह कभी तुम्हें बोलते हुए सुना ही नहीं; न ऐसे स्वर में, न इस मुद्रा से।

ज्वानसिंह : (बहुत देर तक गला साफ करते तथा बगलें झाँकते हुए)……ऐं !……ऐसा……ऐसा……(चुप हो जाता है।)

कृष्णकुमारी : (आश्चर्य और चिन्ताकुल स्वर में) भाया, क्या……क्या बात है ? मुझे तो चिन्ता-सी होने लगी।

ज्वानसिंह : (जल्दी से) कुछ नहीं……कुछ नहीं, भैन। मैं समझता हूँ मेवाड़ पर जो आपत्ति आ रही है उसी का कदाचित् मुझ पर भी प्रभाव होगा।

कृष्णकुमारी : (अत्यन्त आश्चर्य और अत्यधिक चिन्ता से) मेवाड़ पर आपत्ति ! कोई नयी बात हुई है ?

ज्वानसिंह : (फिर गला साफ करते हुए) नयी……नयी बात तो ऐसी कुछ नहीं, पर एक पुरानी……पुरानी बात ने ही नया रूप धारण कर लिया है।

कृष्णकुमारी : (उत्सुकता से) किस बात ने, भाया ?

दूसरा दृश्य

स्थान : रावल में कृष्णकुमारी का महल

समय : प्रातःकाल

[महल का एक कमरा है। दीवालों और छत पर बादली तैल रंग है, जिस पर यथास्थान रंग-बिरंगे बेल-बूटे। खिड़कियों में संगमर्मर की जाली है और दरवाजों की चौखटों और किवाड़ों पर खुदाव का काम। छत से बिल्लौर के झाड़ लटक रहे हैं। सुन्दर कालीन है। कालीन पर सफेद चादर से ढकी हुई गद्दी है, जिस पर सफेद खोली से आच्छादित मसनद लगे हुए हैं। ज्वानसिंह बेचैनी से इधर-उधर टहल रहा है। उसका मुख अत्यन्त म्लान और अत्यधिक चिन्ता एवं उद्विग्नता से व्याप्त दिख पड़ता है। इस समय वह जामा न पहनकर सफेद रंग का लंबा अँगरखा पहने है। अँगरखे के नीचे धोती दिखती है। सिर पर वसंती रंग की पगड़ी है और कमर में उसी रंग का दुपट्टा, पर दुपट्टे में तलवार या कटार नहीं दिखती। कृष्णकुमारी का प्रवेश। उसने अपने भीगे हुए वस्त्र बदल दिये हैं। ओढ़नी है वसंती, घाघरा लाल, और काँचली हरी। सब वस्त्रों पर गोटे की भरमार है। उसने स्नान भी कर लिया है, पर मुख के रंग और गुलाल बिलकुल नहीं छूट पाये हैं। रंग एवं गुलाल की झाँई के कारण उसकी सुन्दरता में और वृद्धि हो गयी है। कृष्णकुमारी की आहट पाकर ज्वानसिंह चौंक-सा पड़ता है और कृष्णकुमारी की ओर देखता है।]

कृष्णकुमारी : (ज्वानसिंह की ओर देखते हुए) मुझे बुलाया, भाया ?

ज्वानसिंह : (भर्राये हुए स्वर में) हाँ, भैन, क्षमा करना, तुम्हारे होली के खेल में बाधा पहुँचायी।

कृष्णकुमारी : (गद्दी पर बैठते हुए) नहीं, नहीं, मैं तो नहाने आ ही रही थी। बैठो। कोई आवश्यक काम होगा ?

[कृष्णकुमारी गोली के साथ जाने लगती है । उसी समय छींक होती है ।]

एक सहेली : (कृष्णकुमारी के निकट बढ़कर, उसे रोकते हुए) बाई साहब, छींक हुई है, आप थोड़ी देर ठहर जायँ ।

कृष्णकुमारी : (हँसते और जाते हुए) मैं इन सब व्यर्थ की बातों को नहीं मानती ।

[नेपथ्य से कुछ शृगालों का शब्द आता है ।]

दूसरी सहेली : (आगे बढ़कर) बाई साहब, ठहर जाइए, ठहर जाइए ।

कृष्णकुमारी : (ठहरकर) क्यों, हुआ क्या ?

वही सहेली : दिन को सियार बोल रहे हैं, बाई साहब…

कुछ सहेलियाँ : (एक साथ घबड़ाहट से) हाँ, हाँ, खोटे, बड़े खोटे सगुन हैं।

कृष्णकुमारी : (हँसते और जाते हुए) अरे छोड़ो भी ये बातें ।

[कृष्णकुमारी गोली के साथ जाती है । कुछ सहेलियाँ चिन्ताकुल दृष्टि से एक दूसरे की ओर देखती हैं ।]

लघु यवनिका

दरबार और पटरानीजी का इतना स्नेह है कि आपका कहना कभी टल सकता है ?

कृष्णकुमारी : (फिर लंबी साँस लेकर) राजस्थान के रावलों में पुत्रियाँ नहीं, वे हैं राजस्थान के राजनैतिक शतरंज की प्यादियाँ! तुम सब राजकुमारियों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र हो, इसीलिए इस प्रकार हँसी कर रही हो। सखियो ! राजस्थान की कन्याओं के लिए न विवाह हर्ष की बात है, न विवाह के पश्चात् का जीवन। (कुछ रुककर) इतिहास देखो—कितनों का विवाह उनकी इच्छा के अनुसार हुआ है; और कितनी विधर्मियों तक को दे दी गयीं ? विवाह के पश्चात् भी किस-किस को किस-किस परिस्थिति का सामना करना पड़ा ? तुम मेरी हँसी उड़ा रही हो, मेरे भाग्य में भी न जाने क्या बदा है ?

आठवीं : पर, बाई साहब, शिशोदियों की कोई राजकुमारी राजपूत के अतिरिक्त किसी को नहीं दी गयी।

नवीं : हाँ, किसका साहस है कि वह उदयपुर के रावल पर दृष्टि···

[एक गोली का प्रवेश। वह आकर कृष्णकुमारी का अभिवादन करती है।]

गोली : बाई साहब, कुँवर ज्वानसिंहजी आपसे मिलने को पधारे हैं।

कृष्णकुमारी : ज्वानसिंहजी ! छारंडी के दिन और इतने तड़के ?

गोली : हाँ, बाई साहब, कहलाया है अत्यंत आवश्यक कार्य है।

कृष्णकुमारी : अच्छा, आयी।

तीसरी : मानो बजता हो होली का चंग चंग चंग !

[सब हँस पड़ती हैं।]

चौथी : विवाह की बात से बाई साहब को इतना हर्ष होता है कि…इतना…इतना हर्ष होता है कि…कि…

कृष्णकुमारी : (गुलाल तीसरी के मुख पर मलते हुए) क्यों नहीं मानेगी, ऐं !

[कई सहेलियाँ पिचकारी से कृष्णकुमारी पर रंग डालती हैं।]

कृष्णकुमारी : मैं न बोलूँ तो आफ़त, बोलूँ तो आफ़त !

पाँचवीं : (कृष्णकुमारी पर प्रेमपूर्वक गुलाल फेंकते हुए) इस बार …इस बार तो रंग गुलाल डाल कर मन की निकाल लेने दो, बाई साहब।

कृष्णकुमारी : (दोनों आँखें हाथों से बन्द करते हुए) मैं नाहीं करती हूँ ?

सातवीं : अच्छा, यह तो बताओ कि महाराजा मान पसन्द हैं या राजा जगत ?

कृष्णकुमारी : (लंबी साँस लेकर) जैसे मैंने किसी को देखा है।

सातवीं : गुण तो सुने हैं। मनुष्य उससे भी प्रेम कर सकता है, जिसे कभी न देखा हो। यथार्थ में सच्चा प्रेम, जो कुछ दिखता है, उससे नहीं, पर जो नहीं दिखता, उससे होता है।

कृष्णकुमारी : जैसे मेरे प्रेम से कुछ होने जाने वाला है ?

छठी : क्यों, मुझे विश्वास है दरबार और पटरानीजी जिससे तुम कहोगी, तुम्हारा विवाह कर देंगे।

कृष्णकुमारी : (गंभीरता से) पर मैं कहने वाली हूँ कौन, सखि ? अब इस देश में स्वयंवर नहीं होते।

पाँचवीं : स्वयंवर चाहे न होते हों, पर, बाई साहब, आप पर

फाग खिलारि नये भये मोहन नाहि करो अब जोवन जोरियाँ।
रोरियाँ मीड़ि कै रंग में बोरियाँ कान्ह पिछानी मैं चोरियाँ नोरियाँ।।

एक सहेली : बाई साहब, हमारे साथ तो यह अन्तिम होली है।

दूसरी : हाँ, अबकी तो जोधपुर के 'रावल' में होली होगी।

तीसरी : नहीं नहीं, जयपुर के 'हवा महल' में।

चौथी : मैं तो जहाँ भी होऊँगी, साथ चलूँगी, बाई साहब।

कुछ सहेलियाँ : (एक साथ) हम सब···हम सब चलेंगी।

पाँचवीं : क्यों, बाई साहब, हम में से किस-किस को ले चलोगी?

[सब एकटक कृष्णकुमारी की ओर देखती हैं। वह कोई उत्तर नहीं देती। कुछ देर निस्तब्धता।]

छठी : सासरे की बात पर बाई साहब कभी बोल ही नहीं सकतीं।

सातवीं : अच्छा, यह कहो, बाई साहब, महाराजा मान पसन्द हैं, या राजा जगत?

[फिर सब एकटक कृष्णकुमारी की तरफ देखती हैं। वह फिर भी कुछ नहीं बोलती। कुछ देर निस्तब्धता।]

आठवीं : चलो, भैनों, चलें, जब बाई साहब बोलती ही नहीं, तब हमारे यहाँ रहने से लाभ?

कुछ सहेलियाँ : (एक साथ) हाँ, हाँ, चलो चलो।

[सब जाने लगती हैं तब कृष्णकुमारी दौड़कर सबका रास्ता रोकती और खिलखिला कर हँस पड़ती है।]

कृष्णकुमारी : तुम सब मुझे कितना तंग करती हो?

एक : तंग करती हैं!

दूसरी : जब हृदय आनन्द से उल्लसित रहता है तब मुख से निकलता है—तंग, तंग, तंग!

पहला दृश्य

स्थान : राजप्रासाद के 'रावल' में नज़र बाग़

समय : प्रातःकाल

[पीछे की ओर ऊँची दीवाल दिखायी देती है, जो हरी लताओं से आच्छादित है। दीवाल के समीप फलों के वृक्षों की कतार है। दीवाल के सामने की ओर तथा दोनों तरफ फ़व्वारों की चौपड़ है, जिसमें नज़दीक-नज़दीक अगणित पत्थर के फ़व्वारे हैं। फ़व्वारे कुण्ड में हैं। कुण्ड में केशरी रंग भरा है और फ़व्वारों से केशरी रंग ही उड़ रहा है। फ़व्वारे की चौपड़ के चारों ओर उससे लगा हुआ पत्थर की चीपों से पटा मार्ग है। इस मार्ग के बाद क्यारियाँ हैं, जिनमें वसन्त के कारण विविध वर्णों के फूल फूले हुए हैं। मार्ग पर कृष्णकुमारी अपनी कई सखियों के साथ होली खेल रही है। कुण्ड में से पिचकारियाँ भर-भर कर रंग चल रहा है और गुलाल उड़ रहा है। कृष्णकुमारी की अवस्था लगभग १६ वर्ष की है। वह गौर-वर्ण की ऊँची, किन्तु दुबली-सी अत्यन्त सुन्दर युवती है। यौवन के कारण उसकी सुन्दरता निखर-सी गयी है। उसकी सहेलियाँ १४ और २० साल के बीच की हैं। कोई गोरी हैं, कोई गेहुएँ वर्ण की और कोई साँवली; सभी सुन्दर दिख पड़ती हैं। सब घाघरा, काँचली और ऊपर से ओढ़नी धारण किये हुए हैं। वसन्त के कारण सब के वस्त्र वसन्ती रंग के हैं और चमकते हुए रुपहरी गोटे तथा गोखरू आदि से युक्त। वस्त्रों पर रंग पड़ने से वे गीले होकर शरीर से चिपट गये हैं। कृष्णकुमारी आभूषणों से भी लदी हुई है। शेष युवतियाँ भी भूषण पहने हैं। गान हो रहा है।]

गीत

फागुन नैन नचावत नाचत डोलत लार न छोरत मोरियाँ।
बीन बजाय अबीर उड़ावत गावत आवत गोरियाँ रोरियाँ॥

अपनी भैन की, सभी की सम्मान-रक्षा के लिए कुँवरजी···
···कुँवरजी इसे करेंगे।

[भीमसिंह ज्वानसिंह की ओर देखता है। ज्वानसिंह सिर झुका लेता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है। फिर एकाएक ज्वानसिंह अपने कमरबन्द से कटार निकाल उसे देखने लगता है। भीमसिंह और अजीतसिंह उसकी ओर देखते हैं।]

यवनिका

अपनी रक्षा……अपने बचाव के लिए एक स्त्री……
एक बच्ची……अनजान, अबोध, दुधमुँही बच्ची की
हत्या की बात सोचें…यह…यह षड्यन्त्र रचें! (उठते
हुए) मैं……मैं यह सब सुन……सुन नहीं सकता……
सोच……सोच नहीं सकता।

[दौलतसिंह का शीघ्रता से प्रस्थान। कुछ देर निस्तब्धता।]

अजीतसिंह : अन्नदाता, मैं कोई नया प्रस्ताव नहीं कर रहा हूँ; हमारे कुल में जन्मते ही कन्याओं का वध किया गया है।

भीमसिंह : वह……वह दूसरी बात है, अजीत, पर कृष्णा को पाल पोस कर, बड़ा कर, उसे सोलह वर्ष की बना, विवाह… …विवाह के समय उसका……उसका……

[भीमसिंह रो पड़ता है। कुछ देर फिर निस्तब्धता।]

अजीतसिंह : मुझे बड़ा ही खेद है, अन्नदाता, कि मैं आपको इस प्रकार कष्ट दे रहा हूँ, पर क्या करूँ, विवश हूँ। आपने मुझे अपनी सम्मति……स्पष्ट सम्मति देने की आज्ञा दी। मेरे कर्तव्य ने भी मुझे स्पष्ट कहने को प्रेरित किया। क्या करूँ ?

भीमसिंह : (भर्राये हुए स्वर में) मैं तुम्हें दोष नहीं देता, अजीत, किन्तु ……किन्तु……(चुप हो जाता है।)

[फिर निस्तब्धता।]

भीमसिंह : (धीरे-धीरे) यह अमानुपिक कृत्य करेगा कौन, और वर्ष के इन त्योहारों के दिनों……?

अजीतसिंह : (कुछ देर विचार करने के बाद, ज्वानसिंह की ओर देखते हुए) अमानुषिक कृत्य, नहीं, महान् कर्तव्य, अन्नदाता। इसे ……इसे करेंगे कुँवर ज्वानसिंहजी! कुल, देश और

गयी है। महाराजा मान और राजा जगत दोनों में से यदि किसी भी एक से अब हमने राजकुमारी के विवाह का निश्चय किया तो सींधिया उस विवाह को कदापि न होने देगा। मेवाड़ पर संकट आयगा, इतना ही नहीं, अन्त में राजकुमारी भी सींधिया के हाथ में जायगी। राजपूत के अतिरिक्त शिशोदियों ने अपनी कन्या कहीं नहीं दी। विधर्मी या शूद्र को शिशोदिया कुमारी कभी नहीं मिली। जो शिशोदिया-कुल में कभी न हुआ, वह होगा, कुल की प्रतिष्ठा धूल में मिलेगी और राजकुमारी का जीवन भी······

[अजीतसिंह चुप हो जाता है। कोई कुछ नहीं बोलता। भीमसिंह के नेत्रों में आँसू आ जाते हैं।]

भीमसिंह : (थोड़ी देर के बाद भर्राये हुए स्वर में) किन्तु······किन्तु, अजीत······(चुप हो जाता है।)

अजीतसिंह : मैं जानता हूँ, अन्नदाता, कि आप पिता हैं, और पुत्री के वध की अनुमति पिता को देने का क्या अर्थ होता है; परन्तु क्या किया जाय ? ऐसे अवसरों पर स्नेह को मोह समझ उसका परित्याग ही करना पड़ता है। फिर राजपूतनियों के लिए प्राण-त्याग कोई बड़ी भारी बात नहीं है, जौहर में······

दौलतसिंह : (बीच ही में) जौहर ! जौहर की बात न करो, ठाकुराँ। वह······वह था बलिदान; यह······यह है हत्या ! वह महान्······महत्तम वस्तु थी, यह निकृष्ट······निकृष्ट-तम बात है। (कुछ रुककर) आह !······आह ! मैं······मैं यह क्या······क्या सुन रहा हूँ ? हम······हम पुरुष

सींधिया को देना बुरा है, तो दूसरी ओर महाराजा मान या राजा जगत से उसका विवाह करना उससे भी बुरा।

[भीमसिंह का सिर फिर झुक जाता है। कोई कुछ नहीं बोलता। कुछ देर फिर निस्तब्धता।]

भीमसिंह : (ज्वानसिंह से) कुँवरजी, तुम क्या कहते हो ?

ज्वानसिंह : (चौंककर) मैं……मैं, अन्नदाता ?

भीमसिंह : हाँ, तुम भी तो अपनी सम्मति दे सकते हो।

ज्वानसिंह : मैं……मैं कोई सम्मति नहीं रखता, अन्नदाता, मैं तो आज्ञा का पालन करना जानता हूँ।

[फिर निस्तब्धता।]

भीमसिंह : (कुछ देर बाद अजीतसिंह से) ठाकुराँ, तुम्हारी बुद्धि की ही सबसे अधिक प्रशंसा है, तुम्हें कोई मार्ग सूझता है ?

अजीतसिंह : केवल एक, अन्नदाता।

भीमसिंह : क्या ?

अजीतसिंह : स्पष्टवादिता के लिए आप क्षमा करेंगे।

भीमसिंह : इस समय भी स्पष्ट न कहोगे तो स्पष्ट कहने का कौन-सा समय आयगा ?

अजीतसिंह : राजकुमारी का निधन।

[सब एक दम से चौंक पड़ते हैं और एकटक अजीतसिंह की ओर देखने लगते हैं।]

अजीतसिंह : मैं जानता हूँ, अन्नदाता, मेरा यह प्रस्ताव हृदय और मस्तिष्क दोनों के लिए भूकंप के सदृश है; मैं इसकी कठोरता, और कठोरता क्या, क्रूरता से अनभिज्ञ नहीं हूँ; परन्तु कुल, देश और राजकुमारी सभी के लिए मेरी दृष्टि से राजकुमारी का निधन अनिवार्य वस्तु हो

का आदर्श वाक्य—"जो दृढ़ राखै धरम को ताहि राखै करतार" आज भी मेवाड़ निवासियों की नस-नस में नये रक्त का संचार कर देता है। आज भी मेवाड़ के राजपूतों के सोलहों मुख्य वंश—चोड़ावत, संगावत, मेगावत, जूगावत, मुक्तावत आदि, इन वंशों के सरदार—राजा, राव, रावत, ठाकुर इत्यादि अपनी-अपनी सेनाओं के साथ अन्नदाता की आज्ञा पाते ही मेवाड़ के लाल झंडे के नीचे एकत्रित हो सकते हैं। ये सब वैसे ही पराक्रमी हैं, अन्नदाता, जैसे पहले थे। मेवाड़ के भीलों में आज भी वही बल है। युद्ध का शंख फूँकते ही सहस्रों की संख्या में वे अपने-अपने धनुष बाणों को लेकर उपस्थित हो जाएँगे। इन राजपूतों और भीलों में जीवन संचार करने वाले चारणों का प्रलय नहीं हो गया है, अन्नदाता।

भीमसिंह : आप स्वप्न देख रहे हैं, रावजी।

दौलतसिंह : (आश्चर्य से) मैं स्वप्न देख रहा हूँ, अन्नदाता ?

भीमसिंह : हाँ, आप स्वप्न देख रहे हैं, रावजी।

दौलतसिंह : तो आप सींधिया का प्रस्ताव स्वीकार करने जा रहे हैं।

भीमसिंह : सो मैं नहीं कहता, किन्तु इसी के साथ आज मेवाड़ एक ओर राठौरों और कछवाहों का, दूसरी ओर मराठों का और तीसरी ओर अंग्रेजों का सामना नहीं कर सकता। कृष्णा का विवाह यदि महाराजा मान से किया गया, अथवा राजा जगत से, तो मेवाड़ पर जो आपत्ति आएगी वह अभूतपूर्व होगी। एक ओर कृष्णा को यदि

पर इतना अवश्य है कि हम लोगों का अस्वीकृति का उत्तर मिलने पर वह चुपचाप बैठने वाला जीव नहीं।

दौलतसिंह : (क्रोध से) तो क्या तुम यह समझते हो कि उसे स्वीकृति का उत्तर मिल सकता है? (क्रोध से जिसके ओंठ फड़कने लगे हैं।) दौलतसिंह के जीवित रहते शिशोदियों की राजकुमारी शूद्र को दी जाय, यह संभव नहीं। मुझे तो आश्चर्य यह है कि उसके मुख से ऐसे अधम प्रस्ताव के निकलते ही अन्नदाता ने उसे तत्काल क्यों न ठुकरा दिया, उसे गणेश-ड्योढ़ी और त्रिपोलिया के बाहर क्यों न निकलवा दिया।

[दौलतसिंह के भाषण के कारण फिर सन्नाटा छा जाता है। भीमसिंह का सिर झुक जाता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

भीमसिंह : (सिर उठाकर) रावजी, मेरे उसके अधम प्रस्ताव को तत्काल ठुकरा न देने का कारण है मेवाड़ की निर्बलता, मेवाड़ का अकेलापन। उसे गणेश-ड्योढ़ी और त्रिपोलिया से बाहर न निकलवाने का कारण है मराठों की इस समय की महान् वीरता और सींधिया की पीठ पर अंग्रेजों का ही रहना नहीं, पर राजपूतों में भी राठौरों का रहना।

दौलतसिंह : किन्तु, अन्नदाता, आपके पूर्वज महाराणा प्रताप के समय भी सारा भारत सम्राट् अकबर के साथ था, मेवाड़ सर्वथा अकेला था, महाराणा राजसिंह के समय भी अकेले मेवाड़ ने औरंगजेब की टिड्डी दल सेना का सामना कर उसे परास्त किया था।

भीमसिंह : यह ठीक है, पर उस समय मेवाड़ निर्बल नहीं था।

दौलतसिंह : और आज भी मेवाड़ निर्बल नहीं है, अन्नदाता। मेवाड़

होली भी है। कल संध्या तक उत्तर दे दें। इतना मैं फिर कहे देता हूँ कि मैंने आपके सामने कोई समस्या नहीं रखी है। एक बहुत छोटा-सा, एक बिलकुल मामूली-सा प्रश्न उपस्थित किया है। देश के जीवन के सामने एक दुधमुँही बच्ची के जीवन का प्रश्न एक ऐसी छोटी-सी बात है जिसके निर्णय में कोई समय ही नहीं लगना चाहिए। फिर मेरा प्रस्ताव यदि आपने स्वीकृत किया तो वह देश की समस्या को हल कर देगा।

[सींधिया दरवाजे की ओर बढ़ता है। भीमसिंह तथा सभी उपस्थित व्यक्ति, जो सींधिया के खड़े होते ही खड़े हो गये थे, उसे दरवाजे तक पहुँचाने जाते हैं। भीमसिंह बिना कुछ कहे, उसके अभिवादन का उत्तर दे, उसे दरवाजे पर बिदा करता है। अजीतसिंह उसके साथ जाता है। भीमसिंह और शेष सब व्यक्ति लौटकर अपने-अपने स्थान पर बैठते हैं। कोई कुछ नहीं बोलता। दृश्य के आरम्भ में जो जिस प्रकार देख रहा था, उसी प्रकार देखने लगता है। कुछ ही देर में अजीतसिंह लौटकर अपनी गद्दी पर बैठ भीमसिंह की ओर देखता है।]

भीमसिंह : **(धीरे-धीरे सिर उठाकर, अजीतसिंह की ओर देखकर)** बोलो, ठाकुराँ, क्या किया जाय, कुछ कहो ?

अजीतसिंह : मैं, अन्नदाता, मैं कहूँ ? **(दौलतसिंह की ओर इशारा कर)** रावजी के बैठे उनके पहले मैं क्या बोल सकता हूँ ?

भीमसिंह : तुमको मैंने इसलिए बोलने को कहा है कि तुम सींधिया के अधिक संपर्क में हो, उसके मनसूबों से अधिक परिचित हो।

अजीतसिंह : जहाँ तक उसके मनसूबों का सम्बन्ध है, उन्हें, अन्नदाता, भगवान् एकलिंगजी के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता,

रुककर) और······और, दरबार, आप तो कृष्णाकुमारी को मुझे, एक हिन्दू को, देकर एक महान् बात करेंगे; राजपूताने का ही नहीं, भारत का इतिहास बदल देंगे। एक पुरानी और एक नयी जाति में, एक ऐतिहासिक गौरव से गौरवान्वित और दूसरी नवीन रक्त से प्लावित जाति में, रक्त का सम्बन्ध स्थापित कर, एक नये इतिहास का निर्माण कराएँगे। अन्तिम निष्कर्ष आप जानते ही हैं। आज आप केवल हिन्दू-पति कहलाते हैं, पर इसके बाद आप होंगे भारत-सम्राट्।

भीमसिंह : परन्तु शिशोदियों का आदर्श वाक्य है—"जो दृढ़ राखै धरम को ताहि राखै करतार।" जो हिन्दू-धर्म वर्ण-व्यवस्था पर अवलंबित है उसे हम मानते हैं, श्रीमन्त।

सींधिया : और हम क्या हिन्दू-धर्म से पृथक् हैं ? दरबार, हम भी हिन्दू हैं। हमें भी हिन्दू-धर्म का, हिन्दू-जाति का, हिन्दुस्थान का अभिमान है। वर्ण-व्यवस्था धर्म से नहीं, समाज से सम्बन्ध रखती है। फिर जो वर्ण-व्यवस्था कर्म के अनुसार थी, वह जन्म के अनुसार हो गयी है। विश्वामित्र राजर्षि होने पर भी कर्म के कारण ब्रह्मर्षि हो गये थे। देवयानी का ब्राह्मण कन्या होने पर भी क्षत्रिय ययाति से विवाह हुआ था। आज मराठों से अधिक कौन वर्ण क्षात्र-धर्म का पालन कर रहा है ?

[भीमसिंह का फिर से सिर झुक जाता है। कुछ देर तक सन्नाटा रहता है।]

सींधिया : (खड़े होते हुए) अच्छी बात है, आप अच्छी तरह सोच लें; अपने भाई बेटों, सरदारों से सम्मति ले लें। आज

पहुँचा कि इससे जो झगड़ा राजपूताने में इस समय उठ खड़ा हुआ है, वह निपटेगा नहीं। राठौर और कछवाहों का झगड़ा चलता रहेगा, इतना ही नहीं, कछवाहे शिशोदियों को राठौरों के साथ समझ आप से भी लड़ते रहेंगे; और फिर तो अंग्रेजों के बोलवाले में कोई सन्देह ही न रह जायगा।

भीमसिंह : और आपके महाराजा मान की ओर से आने पर भी आपके साथ कृष्णा का विवाह महाराजा मान को बुरा न……

सींधिया : (**बीच ही में**) इस बात को आप छोड़ दीजिए। मेरे साथ कृष्णकुमारी का विवाह होने पर महाराजा मान की शक्ति है कि वे उफ़ तक कर सकें? (**कुछ रुककर**) और फिर उस सबको तो मैं निपटाऊँगा। निपटाने की शक्ति रखता हूँ, दरबार। आपको तो अब निर्णय यह करना है कि आप सींधिया को मित्र बनाना चाहते हैं या शत्रु। मित्र सींधिया आपको भारत-सम्राट् बना सकता है, शत्रु सींधिया……(**कुछ रुककर**) खैर जाने दीजिए उस बात को। (**फिर कुछ रुककर**) फिर……फिर मैं आपसे कोई नयी बात नहीं चाहता। राजपूतों ने तो मुसलमानों तक को लड़कियाँ दी हैं।

भीमसिंह : शिशोदियों ने नहीं, श्रीमन्त।

सींधिया : (**फिर एक कहकहा लगाकर**) शिशोदियों ने नहीं! शिशोदिया क्या राजपूतों से अलग हैं? फिर शिशोदियों ने यदि मुसलमानों को लड़कियाँ नहीं दीं, तो उन राठौरों और कछवाहों को दीं, जिन्होंने मुसलमानों को दी थीं। (**कुछ

से इनका आपसी झगड़ा समाप्त हो जायगा और आप से भी ये न झगड़ेंगे, दूसरे राजपूत और मराठे एक सूत्र में बँध कर देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना कर सकेंगे। (कुछ रुककर) दरवार, अवस्था कम होते हुए भी मुझे अनुभव कम नहीं। गद्दी पर बैठते ही निरन्तर संग्राम और संधियाँ करते-करते मुझे देश की परिस्थिति का जैसा अनुभव है, अन्य को नहीं। न जाने कितनी बार मैं जीता हूँ और कितनी वार हारा। मराठों की बढ़ती हुई शक्ति को मेरी और होल्कर की फूट ने जिस प्रकार क्षति पहुँचायी वह मुझे असाई, अरगाँव और लसवाड़ी में अंग्रेजों के साथ युद्ध के समय मालूम हुआ। हम दोनों में मेल होते ही उन युद्धों की पराजय के बाद जो संधि अंग्रेजों से हुई थी उसमें विना युद्ध के ही जो परिवर्तन हुए वह आप जानते हैं। इन परिवर्तनों में सबसे महान् बात यह हुई है कि राजस्थान से मेरा सम्वन्ध रहेगा, अंग्रेज आप लोगों से सीधा सम्वन्ध न रख सकेंगे। मराठों को एक कर, अव मैं मराठों और राजपूतों को एक करना चाहता हूँ, जिसके लिए अंग्रेजों के साथ इस नयी सन्धि के कारण मुझे पूरा अवसर प्राप्त हो गया है।

भीमसिंह : किन्तु, श्रीमन्त, आप तो राठौर दरबार की ओर से मुझे यह कहने को पधारे थे कि मैं कृष्णा का विवाह राजा जगतसिंह से न कर महाराजा मानसिंह से करूँ।

सींधिया : हाँ, मैं आया तो इसीलिए था, परन्तु जब मैंने इस सम्बन्ध में और विचार किया तब मैं इस निश्चय पर

[सींधिया की आवाज सुनकर भीमसिंह चौंक-सा पड़ता है। बाकी सब लोग भी सींधिया की ओर देखने लगते हैं। आगे के भीमसिंह और सींधिया के संभाषण में कभी ये भीमसिंह और कभी सींधिया की तरफ देखते हैं; कभी कोई किसी की ओर और कभी किसी की, पर इन दोनों के संभाषणों के बीच में बोलता कोई नहीं।]

भीमसिंह : (धीरे-धीरे सिर उठा, सींधिया की ओर देखते हुए) मैं समझता हूँ, श्रीमन्त, इसके पूर्व जीवन में मेरे सम्मुख कभी ऐसी समस्या ही न आयी थी।

सींधिया : जीवन ही जब एक बड़ी भारी समस्या है, तब उसमें इस प्रकार के छोटे-मोटे प्रश्नों का उठते रहना एक साधारण-सी बात है।

भीमसिंह : (आश्चर्य भरे स्वर में) छोटे-मोटे प्रश्न ! जो बात आपने मुझे कही है, उसे आप छोटा-सा प्रश्न समझते हैं ?

सींधिया : (अट्टहास कर) सर्वथा ! दरबार साहब, जब हमारे देश के जीवन-मरण के प्रश्न उठे हुए हैं, कल के आये हुए अंग्रेज समस्त देश को हजम कर डकार तक नहीं लेना चाहते, तब अपने को सूर्य और चंद्र के वंशज कहने वाले राजपूत एक दुधमुँही बच्ची के लिए आपस में लड़ें, इससे अधिक लज्जा की और कौन-सी बात हो सकती है ? देश के जीवन के सामने एक बच्ची के जीवन का प्रश्न छोटा-सा प्रश्न नहीं तो और क्या है ? मैंने जो मार्ग आपको बताया है, उससे दो बातें होंगी— एक तो मेरे साथ कृष्णाकुमारी का विवाह होते ही मारवाड़ के महाराजा मानसिंह और जयपुर के राजा जगतसिंह दोनों में से किसी को कृष्णाकुमारी न मिलने

तलवार और दाहनी ओर ऐसी ही मूठ की कटार है। जामे के नीचे पैरों तक सफेद रंग का ही पाजामा है। गले तथा भुजाओं पर स्वर्ण के रत्नजटित आभूषण हैं। भीमसिंह की गद्दी के दाहनी तरफ़ एक और ऐसी ही गद्दी है, पर राजगद्दी से छोटी। इस पर चँदवा नहीं है। इस गद्दी पर दौलतराव सींधिया बैठा हुआ है। सींधिया की उम्र २८ साल के लगभग है। वह गेहुँए रंग का कुछ ठिगना और कुछ मोटा व्यक्ति है। उसके सिर पर भी पट्टे हैं। छोटी-छोटी मूँछें हैं और गल-मुच्छे। सींधिया मराठी ढंग का अंगरखा पहने है और सिर पर मराठी ढंग की ही पगड़ी बाँधे है। भीमसिंह की गद्दी के बायीं ओर तीन गद्दियाँ और हैं। ये और भी छोटी हैं तथा श्वेत वस्त्र से ढकी हुईं। इन पर क्रमशः दौलतसिंह, ज्वानसिंह और अजीतसिंह बैठे हुए हैं। तीनों का वर्ण गेहुँआ है। तीनों ऊँचे-पूरे शरीर के हैं। दौलतसिंह कुछ मोटा और ज्वानसिंह तथा अजीतसिंह दुबले हैं। दौलतसिंह की अवस्था है लगभग ६५ वर्ष की और ज्वानसिंह की ५० तथा अजीतसिंह की ३० साल के करीब। दौलतसिंह के पट्टे तथा मूँछें दाढ़ी सफेद हो गये हैं। ज्वानसिंह और अजीतसिंह के दाढ़ी नहीं है, छोटी-छोटी मूँछों और पट्टों के काले बाल हैं। तीनों की वेश-भूषा भीमसिंह से मिलती-जुलती है; पर इनके सिरों पर मन्दील न होकर वसंती रंग की पगड़ियाँ हैं। महल में एक विचित्र प्रकार का सन्नाटा छाया हुआ है। भीमसिंह का सिर झुका हुआ है और उसके मुख पर महान् चिन्ता का साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। सींधिया उत्सुकता से भीमसिंह की ओर देख रहा है। अजीतसिंह की दृष्टि सींधिया की तरफ है। दौलतसिंह की नजर भूमि की ओर है। उसके मुख पर अत्यधिक क्रोध दृष्टिगोचर होता है और आँखों से आग-सी बरस रही है। ज्वानसिंह शून्य दृष्टि से एक दरवाजे से बाहर अरावली-पर्वत-श्रेणियों की तरफ देख रहा है।]

सींधिया : (कुछ देर बाद मुस्कराते हुए भीमसिंह से) आपके सामने मैंने एक समस्या उपस्थित कर दी; क्यों, दरबार ?

उपक्रम

स्थान : राजप्रासाद में 'सूर्य-महल'

समय : सायंकाल

['सूर्य-महल' एक विशाल आलय है। दीवालें पत्थर की हैं और पत्थर के ही खुदावदार मोटे खंभों पर महल की छत है। दीवालों में कई दरवाजे तथा खिड़कियाँ हैं। खिड़कियों में संगमर्मर की जाली है। दरवाजों की चौखटों और किवाड़ों में खुदाव का काम है। दरवाजों और खिड़कियों से बाहर दूर पर अरावली पर्वत की शिखरावली दृष्टिगोचर होती है। सूर्य की सुनहरी किरणों से बाहर का दृश्य आलोकित है। महल की भूमि पर रंग-बिरंगा सुन्दर क़ालीन है। क़ालीन के बीच में राजगद्दी है। गद्दी ऊँची है और जरदोजी के काम से चमकते हुए मखमली पोश से ढकी है। गद्दी पर इसी प्रकार की मखमली खोली से आच्छादित मसनद लगा है। गद्दी के चारों ओर चार गंगा-जमुनी चोबों पर मखमली चँदवा है। चँदवे पर भी जरदोजी का काम है और चँदवे के चारों तरफ बादले की सुनहरी झालर लटक रही है। राजगद्दी पर भीमसिंह बैठा हुआ है। भीमसिंह की अवस्था लगभग ४५ वर्ष की है। रंग गेहुँआ है और शरीर ऊँचा-पूरा तथा गठा हुआ। बड़ी-बड़ी आँखें, ऊपर को चढ़ी हुई मूँछें तथा दाढ़ी है। ललाट पर केशर का त्रिपुण्ड लगा है। सिर पर मन्दील है। पगड़ी के पीछे और दोनों बगलों में बालों के लंबे पट्टे दिखायी देते हैं। मन्दील पर सामने रत्नजटित तथा मोती पन्ने और माणिक के लटकनों से युक्त सिरपेंच है और दाहनी ओर सुनहरी तुर्रा। शरीर पर गले से पिंडलियों तक लंबा सफेद घेरदार जामा है। क़मर में केशरी रंग का लड़ीदार दुपट्टा बँधा है, जिसके बायीं ओर रत्नजटित स्वर्ण की मूठ की

पात्र, स्थान, समय

मुख्य पात्र :

भीमसिंह : मेवाड़ का राणा

: मेवाड़ की पटरानी

कृष्णकुमारी : मेवाड़ की राजकुमारी

दौलतसिंह : मेवाड़ के राजघराने का एक व्यक्ति

जवानसिंह : मेवाड़ के राजघराने का एक व्यक्ति

अजीतसिंह : मेवाड़ के राजघराने का एक व्यक्ति

संग्रामसिंह : मेवाड़ के राजघराने का एक व्यक्ति

दौलतराव सींधिया : ग्वालियर का मराठा राजा

स्थान : उदयपुर

समय : सन् १८०८ ई०

कृष्णाकुमारी

विषय-सूची

मुख्य वितरक

भारती साहित्य मन्दिर

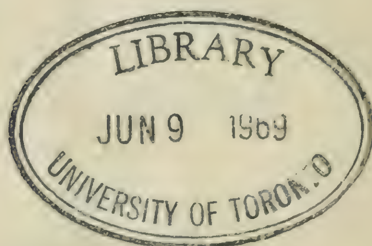
(एस० चन्द एण्ड कम्पनी से सम्बद्ध)

आसफअली रोड नई दिल्ली

फव्वारा दिल्ली

माई हीरां गेट जालन्धर

लालबाग लखनऊ



मूल्य २·७५

श्यामलाल गुप्ता, मैनेजिंग प्रोप्राइटर, एस० चन्द एण्ड कम्पनी द्वारा प्रकाशित
एवं आर० के० प्रिन्टर्स, ८०-डी, कमला नगर, दिल्ली में मुद्रित

अंग्रेजों का आगमन और उसके बाद

[सात एकांकी नाटक]

लेखक

सेठ गोविन्ददास

भारतीय विश्व प्रकाशन
फव्वारा — दिल्ली

अंग्रेज़ों का आगमन और उस के बाद







गोविन्ददास